VISHVA–JYOTI REGD NO. PB-HSP-01 (1.1.2024 TO 31.12.2026) ISSN 0505-7523

R.N. No. 1/57

मासिक पत्रिका (JOURNAL)

विश्वज्योति

(PEER REVIEWED JOURNAL)
(अभिनिर्देशित मासिक पत्रिका)

महाभारत के आख्यान

73वां वर्ष, अंक 1-2, अप्रैल-मई 2024

संचालक–सम्पादक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

सह–सम्पादक
प्रो.(डॉ.) प्रेम लाल शर्मा

प्रकाशन स्थान
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

पद्मभूषण आचार्य डा. विश्वबन्धु जी

(30-09-1897-01-08-1973)

आद्य सम्पादक

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होश्यारपुर

ISSN 0505-7523

प्रकाशक

विश्वेश्वरानन्द–वैदिक–शोध–संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

(अभिनिर्देशित पत्रिका)

(PEER REVIEWED JOURNAL)

प्रकाशन–परामर्शदात्री समिति :

डॉ. दर्शन सिंह निर्वैर, आजीवन सदस्य, वि.वै.शोध संस्थान कार्यकारिणी समिति, साधु आश्रम, होश्यारपुर।

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), 1581, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़।

प्रो. जगदीश प्रसाद सेमवाल, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), एफ–13, पंचशील इन्कलेव, जीरकपुर (मोहाली) पंजाब।

प्रो. (सुश्री) रेणू कपिला, कोठी नं. बी–7/309, डी. सी. लिंक रोड, होश्यारपुर (पंजाब)।

प्रो. रघवीर सिंह, आदरी प्रोफैसर, वी.वी.आर.आई., साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब)।

डॉ. जयप्रकाश शर्मा, 1486, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़।

प्रि. उमेश चन्द्र शर्मा, पी.ई.एस (1), रिटा., शिवशक्ति नगर, होश्यारपुर।

प्रो. (डॉ.) ऋतुबाला, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पं.वि.पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

प्रो. ललित प्रसाद गौड़, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)।

डॉ. रविन्द्र कुमार बरमोला, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पं.वि.पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

दूरभाष : कार्यालय : 01882 – 223582, 223606

संचालक (निवास) : 01882–244750

E-mail : vvrinstitute@gmail.com ,

vvr_institute@yahoo.co.in

Website : www.vvrinstitute.com

मुद्रक : विश्वेश्वरानन्द वैदिक–शोध–संस्थान प्रैस, होश्यारपुर (पंजाब)

प्रकाशन विषयक विशिष्ट नियम

१ विश्वज्योति अभिनिर्देशित पत्रिका **(Peer Reviewed Journal)** विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित की जाती है ।

२ पत्रिका **(JOURNAL)** प्रत्येक मास की २८ तारीख को (अनिवार्य रूप से) प्रकाशित होती है ।

३ इसका प्रकाशन वर्ष अप्रैल मास से प्रारम्भ होता है ।

४ इसके अप्रैल-मई एवं जून-जुलाई के दो वार्षिक विशेषांक प्रकाशित होते हैं ।

५ भविष्य में जो भी प्राध्यापक अथवा शोध-छात्र पदोन्नति या यत्र-तत्र नियुक्तिहेतु विश्वज्योति में लेख को छपवाना चाहते हैं, वे कम से कम ५ पृष्ठ का अथवा अधिक से अधिक ७ पृष्ठ तक का सटिप्पण अपना लेख भेजें, टिप्पण नीचे या लेख के अन्त में दे सकते हैं । ऐसे लेखों पर ही (Peer Reviewed Journal) का ISSN नम्बर छापा जायेगा ।

विशेष: स्वतन्त्र रूप से लेख भेजने वाले विद्वान् लेखकों के लिए यह बन्धन नहीं है । वे स्वतन्त्रता से अपनी रचना, कविता एवं नाटक भेज सकते हैं ।

६ संस्थान के पैटर्न सदस्य, आजीवन-सदस्य तथा वार्षिक-सदस्यों को विश्वज्योति नि:शुल्क नियमत: भेजी जाती है।

७ अन्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के साथ इसका विनियम भी किया जाता है ।

८ विश्वज्योति सम्बन्धी पत्रव्यवहार संचालक अथवा सम्पादक के पते पर किया जा सकता है ।

९ किसी संस्था, पुस्तकालय एवं विद्वान् के आग्रह पर हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार को ध्यान में रखते हुए उनको विश्वज्योति नि:शुल्क भी भेजी जा सकती है ।

१० विश्वज्योति में समालोचनार्थ समालोच्य पुस्तक या ग्रन्थ की दो प्रतियाँ भेजनी अनिवार्य हैं । जिस अंक में समालोचना प्रकाशित की जाती है, वह अंक लेखक को नि:शुल्क भेजा जाता है ।

११ विश्वज्योति का मूल्य निम्न प्रकार से है- भारत में एक प्रति का मूल्य १० रु: विदेश में ३ डालर। भारत में वार्षिक सदस्यता १०० रु: तथा विदेश में वार्षिक सदस्यता- ३० डालर। भारत में आजीवन सदस्यता १२०० रु: तथा विदेश में ३०० डालर है । विशेषाङ्क २ भाग भारत में ५० रु: तथा विदेश में १२ डालर हैं ।

विशेष:- (क) लेखक को पारिश्रमिक देने का नियम नहीं है ।

(ख) प्रकाशित लेख की एक प्रति लेखक को भेजी जाती है ।

सम्पादक

भारत में एक प्रति का मूल्य : 10 रुपये.
विदेश में एक प्रति का मूल्य : 3 डालर.

विषय-सूची

लेखक	विषय		पृष्ठांक
डॉ. कामदेव झा	महाभारत में शकुन्तलोपाख्यान	लेख	९
डॉ. कन्हैयालाल पाराशर	रामोपाख्यान डॉ. पी.एल.वैद्य की दृष्टि में : एक विवेचन	लेख	२१
डॉ. धर्मपाल साहिल	महाभारत की गीता में श्रीकृष्ण की विश्व दर्शन लीला	लेख	२६
डॉ. देवीसिंह	अहिंसाविषयक रुरु-डुण्डभ संवाद	लेख	२९
डॉ. प्रदीप कुमार	महाभारत के 'बलि-इन्द्र' आख्यान में कालतत्त्व	लेख	३५
डॉ. रविन्द्र कुमार बरमोला	महाभारत में परशुराम आख्यान	लेख	४१
डॉ. मृगांक मलासी	महाभारतीय आख्यानों में वर्णित शिक्षा एवं संस्कृति	लेख	४६
डॉ. शैलजा अरोड़ा	धर्मराज युधिष्ठिर ओर द्रौपदी का संवाद	लेख	५३
डॉ. विद्यानन्द 'ब्रहमचारी'	गुरु दुर्वासा ऋषि द्वारा शिष्य रूपी भगवान् श्रीकृष्ण की परीक्षा	लेख	५६
डॉ. कृष्णचन्द्र टवाणी	कपिल का देवहूति को आत्म ज्ञान	लेख	६०
डॉ. सुशव सिंह	महाभारत में कुण्ठाग्रस्त शकुनि	लेख	६३
डॉ. ज्योति खन्ना	रावण और सीता जी में संवाद का नाट्यरूपान्तर	लेख	६५
श्री वीरेन्द्र सिंह भार्गव	महाभारत में सेर भर सत्तू	लेख	६७
डॉ. आदित्य आंगिरस	विष्णुसहस्रनाम में धर्म साधना का स्वरूप	लेख	७०
श्री शुभम् भारद्वाज	महाभारत के कार्तवीर्य उपाख्यान में भगवान परशुराम	लेख	७९
	पुस्तक-समीक्षा		८५-८६
	संस्थान-समाचार		८८
	पुण्य-पृष्ठ		९० -१४१
	जीर्णोद्धार अपील		१४२

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ७३ होश्यारपुर, चैत्र-वैशाख २०८१; अप्रैल-मई २०२४ संख्या १-२

अग्ने मत्युं प्रतिनुदन्परेषां,
त्वं नो गोपाः परिपाहि विश्वतः।
अपाञ्चो यन्तु निवता दुरस्यवो,
ऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत्।। (अथर्ववेद, ५.३.२)

हे अग्नि देव! शत्रुओं के कोप (से भरे आक्रमण) को पीछे धकेलते हुए तुम हमारे रखवारे बन कर सब ओर से हमारी रक्षा करो। हमारी हानि चाहने वाले नीचे धकेले जा कर दूर भागें। (जब वे अपने) घर पर (भी अनिष्ट-चिन्तन करते हुए) जागें, तो उन की चिन्तन-शक्ति विनष्ट हो जाए।

(वेदसार - विश्वबन्धुः)

स्वधर्मम् अपि चावेक्ष्य न विकम्पितुम् अर्हसि।
धर्म्याद् धि युद्धाच् छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते।।

(गीता, २.३१)

(हे अर्जुन, यदि तुम गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार पालनार्थ उपस्थित) अपने धर्म का भी विचार कर लो, (तो भी तुम्हें इस प्रकार) चलायमान होने से बच सकना चाहिए। कारण, क्षत्रिय के लिए धर्म-युक्त युद्ध (में जूझने) से कोई भी दूसरा (कर्म) बढ़ कर नहीं हो सकता।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७३, सं.१-२
अप्रैल-मई ,२०२४

महाभारत में शकुन्तलोपाख्यान

- कामदेव झा

महाभारत संस्कृत-साहित्य का उपजीव्य काव्य रहा है। इसकी महत्ता को देखकर ही पञ्चम-वेद के रूप में स्वीकार किया गया है। महाभारत की कथाओं को लेकर अनेक महाकाव्यों का उद्भव हुआ है। महाभारत को शतसाहस्री के नाम से सम्बोधित करते हैं। ऐसा स्वयं महर्षि वेदव्यास ने आदिपर्व में ही कह दिया है। जैसा कि कहा गया है-

इदं शतसहस्रं हि श्लोकानां पुण्यकर्मणाम्।
सत्यवत्यात्मजेनेह व्याख्यातममि तौजसा।।[१]

इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि महाभारत में एक लाख श्लोक निहित हैं। स्वाभाविक ही रहा होगा कि यह संस्कृत ग्रन्थों का मूल आधार रहा है। इसी प्रकार कविकुल गुरु कालिदास ने भी अपनी अमर कृति अभिज्ञान शाकुन्तलम् का आधार महाभारत को बनाया। इसकी रचना कर विश्वविख्यात हो गये। महाभारत के आदि पर्व में ही शकुन्तलोपाख्यान विस्तार से दिया गया है। राजा दुष्यन्त वन में हिंसक पशुओं का वध कर एक अन्य हिंसक पशु का ही पीछा करते हुये अन्यवन में चले गये। जैसा कि कहा है- **राजा मृगप्रसङ्गेन वनमन्यद् विवेश ह।**[२]

राजा दुष्यन्त कण्व ऋषि के आश्रम में पहुंच गये। वहाँ अपने अमात्य को वही छोड़ कर गये- **ततोऽगच्छन्महाबाहुरेकोऽमात्यान् विसृज्य कश्यपनन्दन**[३] को आश्रम में न देखकर उच्च स्वर में पूछा - **उवाच क इहेत्युच्चैर्वनं संनादयन्निवा।**[४]

राजा दुष्यन्त ने उस वन को प्रतिध्वनित करते हुये बोला- यहाँ कौन हैं? इस उच्च स्वर में पूछे जाने पर एक मूर्तिमती लक्ष्मी सी सुन्दर कन्या तापसी वेष में आश्रम से निकली। जैसा कि कहा है-

श्रुत्वाथ तस्य तं शब्दं कन्या श्रीरिव सुन्दरी।
निश्चक्राम श्रमात् तस्मात् तापसीवेषधारिणी।।[५]

शकुन्तला साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा थी। यद्यपि तापसी वेष में थी किन्तु रूप यौवन से सम्पन्न थी। शील एवं आचारवती शुभ लक्षणों से भरपूर थी। ऐसी अपूर्व सुन्दरी कण्व-पुत्री ने अपनी मधुर वाणी से कहा- हे अतिथिदेव! आपका स्वागत है- **स्वागत त इति क्षिप्रमुवाच प्रतिपूज्य च।**[६] ऐसा सत्कार कर आसन, पाद्य एवं अर्ध्य अर्पित कर राजा दुष्यन्त से पूछा कि आप शरीर से नीरोग है? घर पर कुशल तो हैं? जैसा कि कहा है-

आसनेनार्चयित्वा च पाद्येनार्घ्येण चैव हि।
प्रपच्छानामयं राजन् कुशलं च नराधिपम्।।[७]

शकुन्तला के इस प्रकार पूछने से ध्वनित होता है आश्रम का सदाचार एवं व्यवहार कैसा रहा होगा। कश्यपनन्दन कण्व की आत्मा जो ठहरी। आश्रम की आत्मा ही नहीं अपि मर्यादा की प्रतिमूर्ति थी शकुन्तला। आखिर क्यों न हो। शकुन्तला के इस व्यवहार से अवगत होता है कि महात्मा इलिल जैसे राजर्षि के वंश में भरत के नाम से कुल को प्रतिष्ठित करने वाला तेज को जन्म देने का संकेत हो। शकुन्तला द्वारा कुशल पूछने से कविकुल गुरु कालिदास के कुमारसम्भव की उमा व पार्वती का सम्वाद स्मरण हो जाता है। जहाँ ब्राह्मचारी वेष में शिव ने उमा से पूछा था। जैसा कि कहा भी है- **अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे शरीरमांद्यं खलु धर्मसाधनम्।**[८] यहाँ भी कालिदास ने महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान गत शकुन्तला द्वारा दुष्यन्त को सादर कुशलता पूछने के प्रसंग को उठाया है। कुशल पूछने के पश्चात् शकुन्तला ने बहुत ही शालीनता से मुस्कुरा कर पूछा कि आपकी क्या सेवा की जाय। जैसा कि कहा है- **उवाच स्मयमानेव किं कार्यं क्रियतामिति।**[९]

कण्वदुहिता ने राजा दुष्यन्त से पूछा कि आप कौन हैं एवं महर्षि के शुभ आश्रम में किस लिये पधारे हैं? उस मधुर भाषिणी कण्वदुहिता को राजा ने कहा कि हे कमलनयने! मैं राजर्षि इलिल का पुत्र हूँ एवं मेरा नाम दुष्यन्त है। मैं सत्य कहता हूँ कि मैं कण्व ऋषि की उपासना एवं सत्सङ्ग लाभ करने के लिये आया हूँ। जैसा कि कहा है-

राजर्षेरस्मि पुत्रोऽहमिलिलस्य महात्मनः।
दुष्यन्त इति मे नाम सत्यं पुष्करलोचने।।
आगतोऽहं महाभागमृषिं कण्वमुपासितुम्।
क्व गतो भगवान् भद्रे तन्ममाचदव शोभने।।[१०]

शकुन्तला ने उत्तर दिया कि हे अतिथि! पूज्य श्री फल लाने हेतु आश्रम से बाहर गये हैं- **गतः पिता मे भगवान् फलान्याहर्तुमाश्रमात्।**[११] शकुन्तला ने यह भी कि आप यहाँ आश्रम में प्रतीक्षा करें। आने के पश्चात् मिल लीजिएगा। उस अपूर्व सुन्दरी कण्वपुत्री को देखकर राजा ने पूछा कि तुम कौन हो एवं इस वन में क्यों आयी हो? जैसा कि कहा है-

का त्वं कस्यासि सुश्रोणि किमर्थं चागता वनम्।
एवं स्वगुणोपेत कुतस्त्वमसि शोभने।।[१२]

यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि अभिज्ञान शाकुन्तला नाटक में कविकुल गुरु कालिदास ने कण्व को सोम तीर्थ की यात्रा पर आने की बात कही है, जबकि महाभारत में कण्व ऋषि को फल लाने हेतु आश्रम से बाहर जाने की बातें कहीं गयी हैं। कविकुल गुरु ने शाकुन्तल में सोमतीर्थ की बात कहकर नायक एवं नायिका को पितृ-भय से मुक्त कर दिया है। जो स्वामाविकता की ओर संकेत किया है। शाकुन्तला में एक तपस्वी दुष्यन्त को बताते हैं कि कण्व ऋषि अपनी पुत्री को आतिथ्य सत्कार का भार सौंपकर सोमतीर्थ पर गये हैं- **अद्यैवानवद्यां दुहितरं**

शकुन्तलामतिथि-सत्काराय सन्दिश्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः।[१३]

यहाँ महाभारत की कथा में स्वयं शकुन्तला अपना परिचय दे रही है जबकि शाकुन्तल में सखियों द्वारा दिया गया है। महाभारत की कथा में स्वयं दुष्यन्त शकुन्तला को कहते हैं कि हे शुभे! तुमने दर्शनमात्र से ही मेरा मन हर लिया है-

दर्शवादेव हि शुभे त्वया मेऽपहृतं मनः।[१४]

राजा ने प्रथम मिलन में ही अपनी पत्नी बनाने हेतु वरण करने की बात कही है- **वृणे त्वामद्य सुश्रोणि दुष्यन्तो वरवर्णिनी**[१५] कह कर वरण करने की बात कही है। कण्वदुहिता शकुन्तला हँसती हुई मधुर-वाणी में कहा कि हे दुष्यन्त! मैं तपस्वी, धृतिमान्, धर्मज्ञ तथा महात्मा भगवान् कण्व की पुत्री मानी जाती हूँ। जैसा कि शकुन्तला ने कहा-

कण्वस्याहं भगवते दुष्यन्त दुहिता मता।
तपस्तिनो धृतिमतो धर्मज्ञस्य महात्मनः।।[१६]

इसके पश्चात् राजा दुष्यन्त की जिज्ञासा प्रबल हो उठी कि यह कन्या कण्व की कैसे हुई? इसलिये शकुन्तला से प्रश्न किया कि कण्व ऋषि तो एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। वे अत्यन्त कठोर व्रत का पालन करते हैं। साक्षात् धर्मराज भी अपने सदाचार से विचलित हो सकते हैं किन्तु विश्ववन्दनीय कण्व नहीं, जैसा कि कहा है-

ऊर्ध्वरेता महाभागे भगवाँल्लोकपूजितः।
चलेद्धि वृत्ताद् धर्मोऽपि न चलेत् संशितव्रतः।।[१७]

अतएव ऐसी स्थिति में तुम उनकी पुत्री कैसे हो सकती हो? मेरी इस शङ्का का समाधान करो, मेरा बहुत बड़ा संदेह है। जैसा कि कहा भी है-

कथं त्वं तस्य दुहिता सम्भूता वरवर्णिनि।
संशयो मे महानत्र तन्मे छेत्तुमिहार्हसि।।[१८]

यहाँ महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान में स्वयं ही काश्यपपुत्री शकुन्तला अपने जन्म की कथा सुना रही हैं। वेदव्यास की शकुन्तला अपनी जन्म-कथा सुनाती है। जो इस बात का द्योतक है कि कण्वदुहिता मानसिक रूप से अत्याधुनिक है। वही शकुन्तला कालिदास के समय में लज्जाशील दिखाई पड़ती है। यहाँ यह भी देखने योग्य है कि कालिदास ने शकुन्तला को तत्कालीन समाज के अनुकूल मर्यादित रखने हेतु अनुसूया के द्वारा मेनका एवं विश्वामित्र द्वारा उद्भव की कथा सुनाई गयी है। भागवत पुराण की शकुन्तला भी स्वयं अपने जन्म की कथा दुष्यन्त को सुना रही है-

विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने।[१९]

महाभारत में शकुन्तला को **श्रीरिव**[२०] लक्ष्मी के समान कहकर सम्बोधित की गयी है। दोनों में एक समान वर्णित है। शाकुन्तल में शकुन्तला की सखी अनसूया[२१] कहती है कि शकुन्तला राजर्षि विश्वामित्र द्वारा उज्झित (परित्यक्ता) शब्द से व्यक्त करती है। जिसे पुनः अनसूया विस्तार से मेनका एवं महर्षि विश्वामित्र से उद्भव की बात करती है। यह दोनों मत भागवत से मिलते जुलते है। शाकुन्तल में अनुसूया इसे इस प्रकार कहती

है- **पुरा किल तस्य कौशिकस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य किमपि जातशङ्कैर्देवैर्मेनका नामाप्सरा नियमविघ्नकारिणी प्रेषिता।** शकुन्तला की सखियों का प्रसङ्ग पद्मपुराण से संगृहीत है। ये दोनों पात्र भागवत में भी नहीं हैं। भागवत में शकुन्तला नीवार (वन का अन्न) भोजन करने का भी निमन्त्रण देती हैं- **भुज्यतां सन्ति नीवारा उष्यतां यदि रोजते।**[२४] शकुन्तला वहाँ ठहरने का भी निमन्त्रण दे रही है। इसके बाद गान्धर्व विवाह भी करती है। जिसका प्रमाण भागवत में इस प्रकार है- **गान्धर्वविधिना राजा देशकालविधानवित्।**[२५] भागवत का दुष्यन्त शकुन्तला को उसके कुशिकवंश की परम्परा का उदाहरण दे रहें हैं कि कुशिक वंश में स्वयं कन्याएँ अपने अनुकूल वर का वरण करती रही हैं। जैसा कि कहा भी गया है- **स्वयं हि वृणते राज्ञां कन्यकाः सदृशं वरम्।**[२६] दुष्यन्त का यह कथन कुशिकवंश का ही नहीं है अपितु कुशिकवंश अथर्ववेद में विहित प्रसङ्ग के अनुकूल करते रहे होंगे। इसका प्रमाण अथर्ववेद में इस प्रकार है- **ब्रह्मचर्येण कान्या युवानं विन्दते पतिम्।**[२७] इससे ज्ञात होता है कि राजा दुष्यन्त वेदज्ञ भी थे। जिससे वे उदाहरण कुशिकवंश का वेदोक्त ढंग से दे रहे हैं। महाभारत की शकुन्तला राजा दुष्यन्त को अपने जन्म की समग्र कथा सुना रही है कि किस प्रकार इन्द्र द्वारा विश्वामित्र की तपस्या से भयभीत होकर तप को भंग करने हेतु मेनका को पृथ्वी पर प्रेषित किया गया। वे अत्यन्त भयभीत थे कि कहीं मेरा इन्द्र सन ले न ले। जैसा कि शकुन्तला ने कहा-**भीतः पुरन्दस्तस्मान्मेनकामिदमब्रवीत्**[२८] इस प्रकार मेनका ने विश्वामित्र का तपोबल भंग कर दिया। एवं, उसके महान् तेज से शकुन्तला का उद्भत हुआ। यह सम्पूर्ण कथा शकुन्तला ने स्वयं दुष्यन्त को सुना दी। यह भी कहा कि हे राजन्! मेनका ने मुझे जन्म दिया एवं अपने उद्देश्य को पूर्ण कर मुझे छोड़कर इन्द्रलोक चली गयी। इस जन्म का उदाहरण इस प्रकार दिया- **जनयामास स मुनिर्मेनकायां शकुन्तलाम्।** यह बताती है कि मेनका ने उस अपूर्व सुन्दरी कन्या का जन्म हिमालय के रमणीय शिखर पर मालिनी नदी के तट पर दिया। उस नवजात कन्या को मालिनी के तट पर छोड़कर शक्रलोक चली गयी। जैसा कि कहा है-

प्रस्थे हिमवतो रम्ये मालिनीममितो नदीम्।
जातमुत्सृज्य तं गर्भं मेनकामालिनीमनु।।[३०]

उस भयानक निर्जन एवं सिंह- व्याघ्र से भरे हुये नव-जात को देखकर शकुन्तों (पक्षियों) ने अपने पंखों से ढ़ककर रक्षा की। जैसा कि कहा गया है-

तं वने विजने गर्भं सिंहव्याघ्रसमाकुले।[३१]
दृष्ट्वा शयानं शकुनाः समन्तात् परिवारयन्।।[३२]

उपर्युक्त प्रसंग को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि पशु-पक्षियों में भी दया भरी हुई थी। उस तिर्यक् योनि में उत्पन्न होकर भी वात्सल्य की

भावना से ओतप्रोत दृष्टिगोचर हो रहे थे। वे सभी पक्षी कण्व को देखकर मधुर वाणी से बोलने लगे। कहा, कि हे मुनिवर! मुनि विश्वामित्र की कन्या आपके लिये धरोहर के रूप में अवतरित हुई है।

आप इसका प्रतिपालन करें। आप दयालु हैं, अत एव आप इसे न्यास रूप में ले जाइये। जैसा कि कहा है- **विश्वामित्रसुतां ब्राहम् न्यासभूतां भरस्व वै।** कण्व कहते हैं कि मैं सभी प्राणियों की भाषा जानता हूँ। मैं इस कन्या को पुत्री रूप में वरण करता हूँ। जैसा कहा भी है-

सर्वभूतरुतशोऽहं दयावान् सर्वजन्तुषु।
निर्जनेऽपि महारण्ये शकुनैः परिवारिताम्।[३४]

इन शकुन्तों अर्थात् पक्षियों ने परिपालित किया है अतः इसका नाम शकुन्तला रख दिया। जैसा कि कहा गया है-

निर्जने तु वने यस्माच्छकुन्तैः परिवारिता।
शकुन्तलेति नामास्याः कृतं चापि ततो मया।।[३५]

शकुन्तला राजा ने दुष्यन्त को कहती है कि हे राजन्! मैं तो अपने पिता को नहीं जानती हूँ किन्तु कण्व ही मेरे पिता हैं एवं मैं इनकी बेटी हूँ-

कण्वं हि पितरं मन्ये पितरं स्वमजानती।
इति ते कथितं राजन् यथा वृत्तं श्रुतं मया।।[३६]

राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला को क्षत्रिय-कुलोद्भवा सुनकर हर्षित होकर कहा कि हे कल्याणि! तुम तो क्षत्रिय-कन्या हो। तुम मेरी पत्नी बन जाओ। जैसा कि कहा है-

सुव्यक्तं राजपुत्री त्वं यथा कल्याणि भाषसे।
भार्या मे भव सुश्रोणि ब्रूहि किं करवाणि ते।।[३७]

शकुन्तला को राजा बहुत सारे आभूषण आदि देने की बाते कहता है। यहाँ तक कि सम्पूर्ण राज्य की अधिकारिणी होने की घोषणा करता है। जैसा कि कहा है-

आहरासि तवाद्याहं निष्कादीन्यजिनानि च।
सर्वं राज्यं तवाद्यास्तु भार्या मे भव शोभने।।[३८]

राजा शकुन्तला को गान्धर्व विवाह को श्रेष्ठ विवाह कह कर उत्साहित करता है- **विवाहानां हि रम्भोरु गान्धर्वः श्रेष्ठ उच्यते।**[३९] शकुन्तला तो पहले राजा दुष्यन्त को धीरज रखने की बात कहती है एवं पिता के लिये कहती है कि वे फल लाने हेतु आश्रम से बाहर गये हैं। कुछ देर ठहरो, वे ही तुम्हे सौंप देंगे। जैसा शकुन्तला ने कहा-

फलाहारो गतो राजन् पिता मे इत आश्रमात्।
मुहूर्त सम्प्रतीक्ष्व स मां तुभ्यं प्रदास्याति।।[४०]

दुष्यन्त बहुत ही अधीर है शकुन्तला को पाने के लिये। कहता है कि बार-बार दुष्यन्त कण्वसुता को हे सुन्दर एवं प्रशंसनीय शील वाली शकुन्तले! तुम मुझे स्वेच्छा से स्वीकार करो। मैं तुम्हारे लिये ही ठहरा हूँ। मेरा मन तुझमें ही लगा हुआ है। शकुन्तला स्वयं मेनका एवं तपोधनी विश्वामित्र की रूपवती कन्या जो ठहरी और जो स्वयं सौन्दर्य में रमा की तरह है। जिसे देखकर दुष्यन्त अचम्भित होकर कहता है कि मनुष्य लोक में ऐसी सुन्दर कन्या सम्भव नहीं है। इस कान्ति से युक्त प्रभा पृथ्वी के तल से असम्भव है। जैसा कि

शाकुन्तल में कह गया है–

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्।।[४१]

सच में कण्वसुता का सौन्दर्य अलौकिक एवं आकर्षक था। जिससे इलिल–पुत्र दुष्यन्त भी पाने के लिये बैचैन हैं। आखिर हो भी क्यों न। वह तो भरत जैसे पुत्र को जनने जा रही है जो साक्षात् विष्णु का अंशावतार था। उसका बल–विक्रम अपरिमित था। जिसकी चर्चा श्रीमद्भागवत में की गयी है–

तं दुरत्ययविक्रान्तमादाय प्रमदोत्तमा।
हरेरंशांशसम्भूतं भर्तुरान्तिकमागमत्।।[४२]

दुष्यन्त कहता है कि मेरा मन तुझमें आसक्त हो गया है। तुम मुझे स्वीकार करो–

इच्छामि त्वां वरारोहे भजमानासनिन्दिते।
त्वदर्थं मां स्थितं विद्धि त्वद्गतं हि मनो मम।।[४३]

महाभारत का दुष्यन्त अधीर होकर कहता है कि हे कण्वदुहिते! तुम पिता से क्या आज्ञा लोगी? आत्मा ही अपना मित्र है और अपना पिता है। तुम स्वयं ही धर्मपूर्वक आत्म–समर्पण करने योग्य हो–**आत्मनैवात्मनो दानं कर्तुमर्हसि धर्मतः।**[४४] राजा दुष्यन्त बहुत प्रकार इस विवाह को मनु द्वारा समर्थित बताता है। अतः तुम मेरी पत्नी इस गान्धर्व विवाह से बन जाओ। जैसा कि दुष्यन्त ने कहा–

सा त्वं मम सकामस्य सकामा वरवर्णिनी।
गान्धर्वेण विवाहेन भार्या भवितुमर्हसि।।[४५]

कण्वसुता शकुन्तला कहती है कि यदि यह विवाह गान्धर्व शास्त्रोचित है एवं धर्म का मार्ग है। साथ ही यह कहती है कि यदि आत्मा स्वयं ही अपना दान करने में समर्थ है तो इसके लिये मैं तैयार हूँ। हे प्रभो! मेरी यह शर्त है कि मेरे गर्भ से आपका जो भी पुत्र उत्पन्न हो वह युवराज हो। जैसा कि कहा है–

यदि धर्मपथस्त्वेष यदि चात्मा प्रभुर्मम।
प्रदाने पौरवश्रेष्ठ श्रृणु मे समयं प्रभो।।

अपने पुत्र को युवराज हेतु कहती है कि यदि यह शर्त स्वीकार है तो समागम सम्भव है–

सत्यं मे प्रतिजानीहि यथा वक्ष्याम्यहं रहः।[४७]
मयि जायते यः पुत्रः स भवेत् त्वदनन्तरः।।[४८]
युवराजो महराज सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।
यद्येतदेवं दुष्यन्त अस्तु मे सङ्गमस्त्वया।।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि महाभारत की शकुन्तला कोई साध्वी नहीं है, जैसा कि शाकुन्तल की शकुन्तला है। इस शकुन्तला ने समागम से पूर्व शर्त रखी है कि उन्हीं का पुत्र युवराज हो तब समागम सम्भव है, अन्यथा नहीं। जिस प्रकार शकुन्तला ने शर्त रखी थी उसी प्रकार समागम हेतु अधीर दुष्यन्त ने भी बिना विचार किये शर्त स्वीकार कर ली। बिना विचार से किया कार्य निश्चय ही सन्देह से युक्त होता है। राजा ने भी स्वीकार कर लिया –

एवमस्त्विति तां राजा प्रत्युवाचाविचारयन्।
अपि च त्वां हि नेष्यामि नगरं स्वं शुचिस्मिते।।[४९]

दुष्यन्त ने यह भी कह दिया कि मैं शीघ्र

अपने नगर में ले जाऊँगा। यहाँ पवित्र मुस्कान वाली कहकर सम्बोधन किया है। जिसका भरपूर प्रयोग कालिदास ने कुमारसम्भव में उमा के लिये प्रयोग किया है। दुष्यन्त ने बार-बार शकुन्तला को कहा कि हे शुचिस्मिते! मैं तुझे अपने पुण्यार्जित कर्म का शपथ खाकर कहता हूँ कि तुझे अपने नगर में बुला लूँगा। जैसा कि महाभारत के दुष्यन्त ने कहा-

तां देवी पुनरुत्थाप्य मा शुचेति पुनः पुनः।
शपेयं सुकृतेनैव प्रापयिष्ये नृपात्मजे।।[५०]

शकुन्तला को चतुरङ्गिणी सेना भेजकर ले जाने की बात कहते हैं। शकुन्तला इलिलपुत्र दुष्यन्त की बात सुनकर आत्म-समर्पण कर दिया। इस प्रकार शकुन्तला को वचन देकर एवं मन में कश्यपनन्दन कण्व के भय से चिन्तित होते हुये नगर में चले गये। जैसा कि कहा है-

भगवांस्तपसा युक्तः श्रुत्वा किं नु करिष्यति।
एवं स चिन्तयन्नेव प्रविवेश स्वकं पुरम्।।[५१]

उनके कुछ ही क्षण बीत जाने बाद कण्व मुनि आश्रम में पहुँच गये। किन्तु शकुन्तला लज्जावश पूर्व वत् पिता के समक्ष नहीं गयी। जैसा कि कहा गया है- **शकुन्तला च पितरं ह्रिया नोपजगाम तम्।**[५२] पुत्री को ऐसी स्थिति में देख कण्व ने कहा कि हे पुत्री! तुम सलज्ज रहकर ही दीर्घायु हो। हे शुभे! डरो मत। निर्भय होकर सारी बाते कहो- **वृत्तं कथय रम्भोरु मा त्रासं च प्रकल्पय।**[५३] महातपस्वी कश्यपनन्दन ने दिव्य चक्षु सब कुछ समझ गये एवं प्रसन्न होकर कहा-

उवाच भगवान् प्रीतः पश्यन् दिव्येन चक्षुषा।[५४]

शकुन्तला को बहुत बड़ा आशीर्वाद दिया और पिता ने कहा कि हे शुभे! तुम्हारा पुत्र महाबली होगा एवं सम्पूर्ण पृथ्वी पर भोग करेगा-

महात्मा जनिता लोके पुत्रस्तव महाबलः।
य इमां सागरापाङ्गी कृत्स्नां मोक्षयति मेदिनीम्।।[५५]

भागवत में तो स्पष्ट कह ही दिया गया है कि वह पुत्र हरि का अंशावतार होगा। इसी तरह यहाँ भूरि-भूरि आशीष दिया कण्व ने अपनी श्रीरूपा पुत्री को। समय आने पर पुत्र का जन्म हुआ। शकुन्तला के पुत्र का फिर वेदोक्त विधि से जातक संस्कार किया गया-

जातकर्मादिसंस्कारं कण्वः पुण्यकृतां वरः।
विधिवत् कारयामास वर्धमानस्य धीमतः।।[५६]

वह बालक इतना बलशाली था कि छह वर्षों की आयु में ही आश्रम में सिंहों, व्याघ्रों, हाथियों को खींचकर वृक्षों में बाँध देता था। जैसा कि कहा है-

सिंहव्याघ्रान् वराहांश्च महिषांश्च गजांस्तथा।
बबन्ध वृक्षे बलवानाश्रमस्य समीपतः।।[५७]

इस प्रसंग को देखकर शाकुन्तल के दुष्यन्त का विस्मित होकर सर्वदमन का दृष्य स्मरण-पथ पर आ गया। जहाँ मारीचि के आश्रम में जाने पर सिंह के शावक को मातृ-दुग्ध पीते हुये खींचकर जंभाई हेतु मुँह खोलने के लिये विवश कर रहा है- **जृम्भस्व जृम्भस्व रे मृगशावक! तन्तांस्ते**

गणयिष्यामि।[५८] सिंह के बच्चों के दाँत गिनने का प्रयास कर रहा है। सबको दमन कर रखने के कारण शकुन्तला पुत्र का नाम सर्वदमन रखा गया- **स सर्वदमनो नाम कुमारः समपद्यत।**[५९] बारह वर्ष की आयु में उस बालक में सभी वेद व शास्त्रों का उदय स्वतः हो गया। जैसा कि कहा गया है- **शास्त्राणि सर्ववेदाश्च द्वादश शाब्दस्य चाभवन्।**[६०] कण्व ने अपने शिष्य को बलाकर कहा कि मेरी पुत्री शकुन्तला को उसके पति के घर पहुँचा दो। जैसा कहा है- **भर्तुः प्रापयतागारं सर्वलक्षणपूजिताम्।**[६१] यहाँ यह भी बात कण्व ने कही कि नारी का अपने भाई-बन्धुओं के पास चिरवास अच्छा नहीं होता। विवाहिता स्त्री की शोभा अपने ससुराल में ही होती है। यह भी कहा है कि चिरवास उनकी कीर्ति, शील तथा पातिव्रत्य धर्म का नाश करने वाला होता है। जैसा कि कहा है-

नारीणां चिरवासेहि बान्धवेषु न रोचते।
कीर्तिचारित्रधर्मध्वस्तस्मान्नयत चिरम्।।[६२]

कालिदास के समय में भी यही प्रथा थी एवं आज भी भारतीय समाज की सोच यथावत है। शाकुन्तल में भी कहा गया है- **उपयन्तुर्हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी।**[६३]

यहाँ भी महाभारत में शीघ्र ही पति-गृह पहुँचाने की बात कही गयी है। शाकुन्तल में भी शिष्यों के साथ शकुन्तला पतिगृह गमन करती है। यहाँ भी ऐसा ही है। शकुन्तला बालसूर्य के समान तेज वाले पुत्र के साथ राज-सभा में प्रविष्ट हुई- **सह तेनैव पुत्रेण बालार्क समतेजसा।**[६४] शकुन्तला स्वयं दुष्यन्त से कहती है कि हे राजन्! यह पुत्र आपका है। इसे युवराज पद पर अभिषिक्त कीजिए। जैसा कि उसने कहा- **अयं पुत्रस्त्वया राजन् यौवराज्येऽभिषिच्यताम्।**[६५] दुष्यन्त को उसके वचन का भी स्मरण करा रही है। दुष्यन्त उसे लेने भी नहीं आया था। अतएव शर्त का स्मरण करा रही है- **तं स्मरस्त महाभाग कण्वाश्रमपदं प्रति।**[६६]

महाभारत का दुष्यन्त शकुन्तला द्वारा स्मरण कराने पर कि आपने मेरे साथ धर्म, काम एवं अर्थ को लेकर सम्बन्ध स्थापित किया था। दुष्यन्त ने सब कुछ नकार दिया एवं कहा कि मुझे कुछ स्मरण नहीं है। तुम इच्छानुसार जाओ या रहो अथवा जो तुम्हारी रुचि है वह करो। जैसा कि कहा-

धर्मकामार्थ सम्बन्धं न स्मरामि त्वया सह।
गच्छ वा तिष्ठ वा कामं यद् वापीच्छसि तत् कुरु।।[६७]

दुष्यन्त तो शकुन्तला को दुष्ट तापसी कहकर विवाह प्रसंग को मानने से इन्कार कर दिया। दुष्यन्त ने इस महाभारत में ऋषिकन्या का ही नहीं अपितु नारी जाति की सर्वदा अवहेलना की है, जो राजोचित नहीं है। **अब्रवीन्न स्मरामीति कस्य त्वं दुष्टतापसि**[६८] - कहकर सम्बोधित किया है। कविकुल गुरु कालिदास ने तो अपने नायक दुष्यन्त को शकुन्तल नाटक में शाप की बात कहकर चरित्र को उज्ज्वल किया है किन्तु यहाँ तो

दुष्यन्त ने अपनी धर्मपत्नी कण्वसुता को स्वीकार न कर अपमान किया है। कालिदास ने तो शाप से दुष्यन्त के इस कृष्ण पक्ष को आवरित कर दिया है-

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न मामुपरिथतम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपिसन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव।।[६९]

शाकुन्तल नाटक में तो शकुन्तला गर्भवती के रूप में दुष्यन्त से मिलती है किन्तु शकुन्तला अपने पुत्र के साथ मिलने जाती है। महाभारत में उस पुत्र की भी अवहेलना हुई है जो दुष्यन्त के वंश का शिरोमणि होगा। जिस भरत पर वंश का गौरव होगा। इससे स्पष्ट होता है कि जो बड़े एवं गौरवशाली पुरुष होते हैं उनका कई कठिन परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है। कालिदास ने संकेत किया है कि शकुन्तला ने अपने पिता की आज्ञा के बिना विवाह किया है अतएव ऐस प्रेम-विवाह वैर का कारण बनता है। जैसा कि शाकुन्तल में कहा गया है-

अतः परीक्ष्य कर्त्तव्यं विशेषत्सङ्गतं रहः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्।।[७०]

शकुन्तला ने बिना विचार से ही गान्धर्व विवाह रचाया। जिसका परिणाम उसने अपमान के रूप में प्राप्त किया। भागवत के अनुसार तो शकुन्तला ने विष्णु के अंश को ही जन्म दिया था, चाहे जो भी स्थिति रही हो, किन्तु शकुन्तला का सचमुच तिरस्कार असहनीय था। इसने दुष्यन्त का चरित्र स्वीकार्य नहीं है। भागवत का दुष्यन्त देश, काल और शास्त्र की मर्यादा के अद्भुत ज्ञानी थे फिर भी उन्होंने उस कण्व-पुत्री को अस्वीकार किया। जबकि दुष्यन्त **देशकालविधानवित्**[७१] से स्मरण किये गये हैं। आज भी पृथ्वी पर शकुन्तला पुत्र भरत की महिमा का गान होता है- **महिमा गीयते तस्य हरिवंशभुवो भुवि।**[७२] दुष्यन्त द्वारा इनकार करने पर वह कण्वदुहिता संज्ञाशून्य होकर खंभे की तरह निश्चल भाव से खड़ी रही। जैसा कि महाभारत में कहा गया है- **निःसंज्ञेव च दुःखेन तस्थौ स्थूणेव निश्चला।**[७३] शकुन्तला ने बहुत प्रकार से दुष्यन्त को स्मरण दिलाने का प्रयास किया किन्तु दुष्यन्त निष्ठुर बना रहा। पति-पत्नी के सहज सम्बन्ध को भी शकुन्तला ने व्याख्यात किया। कहा कि पति ही पत्नी के गर्भ रूप में प्रवेश कर पुत्र रूप में जन्म लेता है। जैसा कि उन्होंने कहा भी है-

भार्यां पतिः सम्प्रविश्य स यस्माज्जायते पुनः।
जायायास्तद्धि जायात्वं पौराणाः कवयो विदुः।।[७४]

पत्नी की महत्ता का प्रतिपादन करती हुई शकुन्तला कहती है कि भार्या पुरुष का आधा अंग है। भार्या उसका सबसे उत्तम मित्र है। भार्या धर्म, अर्थ एवं काम का मूल है और संसार-सागर से पार करने के लिये भार्या ही प्रमुख साधन स्वरूपा है। जैसा कि कहा गया है-

अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।

भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यत: ।।[७५]

पुत्र का आनन्द क्या होता है, कोई शकुन्तला के मुख से सुने। जब पुत्र धूल में सना हुआ पास आता है और पिता के अंगों से लिपट जाता है, उस समय जो सुख मिलता, उससे बढ़कर और क्या हो सकता है? जैसा कि कहा है-

प्रतिपद्य यदा सूनुर्धरणीरेणुगुण्ठित: ।
पितुराश्लिष्यतेऽङ्गानि किमस्त्यभ्यधिकं तत: ।।[७६]

इस प्रसङ्ग को देखकर अभिज्ञान शाकुन्तल के सप्तम अंक का स्मरण हो जाता हैं जहाँ इस अनुभव की कल्पना में दुष्यन्त डूबे हुये हैं और कहते हैं कि वे व्यक्ति धन्य होते हैं जिनके अंग बालक के धूल से सने हुये अंग से मलिन हो जाते हैं- **धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति।**[७७] शकुन्तला पुन: दुष्यन्त को पुत्रस्नेह में बान्धना चाहती है और कहती है कि पुत्र के स्पर्श से बढ़कर संसार में कुछ भी नहीं है। जैसा कि दुष्यन्त को शकुन्तला ने कहा है- **पुत्रस्पर्शात् सुखतर: स्पर्शो लोके न विद्यते।**[७८] कण्वदुहिता को अपनी माता मेनका पर आक्रोश भी है कि उसने जन्म देकर एवं परायी सन्तान की तरफ छोड़कर चली। इससे मेनका की पीड़ा स्वत: स्पष्ट हो जाती है-

सा मां हिमवत: प्रस्थे सुषुवे मेनकाप्सरा: ।
अवकीर्य च मां याता परात्मजमिवासती ।।[७९]

सच में पीड़ा उछल पड़ी है। पति का साथ मिल जाए तो स्त्री माता के दर्द को सह लती है। यहाँ पति द्वारा अवहेलना से कण्वसुता टूट चुकी है। शकुन्तला कहती है कि हे राजन्! मैं तो यहाँ से लौटकर वन को चली जाऊँगी किन्तु अपने पुत्र का आप मत त्याग करें।[८०]

शकुन्तला पुत्र को कम अवस्था में विशाल शरीर एवं बल देखकर दुष्यन्त कहता है कि यह बाल शालवृक्ष से निर्मित खंभे की तरह है। ऐसा लम्बा कैसे हो गया-

अतिकायश्च ते पुत्रो बालोऽतिबलवानयम्।
कथमल्पेन कालेन शालस्तम्भ इवोद्भव: ।।[८१]

शकुन्तला एवं दुष्यन्त के साथ बहुत सारे संवाद हुये। अन्त में शकुन्तला जब चलने के लिये उद्यत हुई, उसी समय दुष्यन्त को सम्बोधित करते हुये समस्त पुरोहित, ऋत्विज व मन्त्रियों के समक्ष आकाशवाणी हुई कि हे पौरव! यह महामना बालक शकुन्तला एवं दुष्यन्त का पुत्र है। हम देवताओं के कहने से तुम इसका पालन पोषण करोगे। जैसा कि महाभारत में कहा गया है-

शाकुन्तलं महात्मानं दौष्यन्तिं भर पौरव।
भर्तव्योऽयंत्वया यस्मादस्माकं वचनादपि।।[८२]

ऐसा कहकर देवता, तपस्वी ऋषि शकुन्तला को पतिव्रता बतलाते हुये उस पर फूलों की वर्षा करने लगे। राजा दुष्यन्त भी यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। जैसा कि कहा गया है-

पतिव्रतेति संहृष्टा: पुष्पवृष्टिं ववर्षिरे।
तच्छ्रुत्वा पौरवो राजा व्याहृतं त्रिदिवौकसाम्यम्।।[८३]

आकाशवाणी के पश्चात् दुष्यन्त ने स्वीकार

किया कि शकुन्तला मेरी पत्नी है एवं यह बालक मेरा पुत्र है। दुष्यन्त यह भी कहते हैं कि यदि मैं मात्र कण्वदुहिता शकुन्तला के कहने पर स्वीकार कर लेता तो सब लोग इस पर सन्देह करते एवं यह बालक विशुद्ध नहीं माना जाता–

अहं चाप्येवमेवैनं जानामि स्वयमात्मजम्।
यद्यहं वचनादस्या गृह्णीयामि ममात्मजम्।।[२४]

उस पुत्र को दुष्यन्त ने आनन्द के साथ ग्रहण किया। जैसा कि कहा गया है– **हृष्टः प्रमुदितश्चापि प्रतिजग्राह तं सुतम्।**[२५]

इस प्रकार दुष्यन्त ने अपने पुत्र भरत के उपनयन संस्कार आदि पिता के रूप में सम्पन्न किया। शकुन्तला के समक्ष भी स्वीकार किया कि हे देवि! हमारा तुम्हारा सम्बन्ध साधारण जन नहीं जानते थे। अतः तुम्हारी शुद्धि के लिये ही मैंने यह उपाय सोचा था। इसके पश्चात् राजा दुष्यन्त ने अपने पुत्र भरत को युवराज के पद पर अभिषिक्त किया। जैसा कि महाभारत में कहा गया है– **भरतं नामतः कृत्वा यौवराज्येऽभ्यषेचयत्।**[२६] महाभारत एवं भागवत में आकाशवाणी द्वारा शकुन्तला को पतिव्रता एवं सच्चरित्र की घोषणा की गयी है, जबकि शाकुन्तल नाटक में मारीचि ऋषि द्वारा प्रमाणित किया गया है। महाभारत में शकुन्तला का यह उपाख्यान अत्यन्त रोचक एवं ज्ञानप्रद है। भरत जैसे प्रतापी राजा का जन्म भी अत्यन्त रोचक है। शकुन्तला को महर्षि वेद व्यास ने 'श्रीरिव' कहकर साक्षात् लक्ष्मी रूपा कही है। भागवत में भी 'रमामिव' कहकर प्रतिष्ठित की गयी। शकुन्तला सच में अपनी प्रभा से आश्रम को ज्योतिर्मय करती थी। मेनका की पुत्री शकुन्तला अपने पिता कण्व के आश्रम की आत्मा थी जो भरत को जन्म देकर त्रिलोक प्रसिद्ध हुई, इति शम्।

---

१. महाभारत, आदिपर्व, ६२.१४ २. वही, ७०.१ ३. वही, ७१.१
४. वही, ७१.२ ५. वही, ७१.३ ६. वही, ७१.४
७. वही, ७१.५ ८. कुमारसम्भवम्, ५.३३ ९. महाभारत आदिपर्व, ७१.६
१०. वही, ७१.८ ११. वही, ७१.९ १२. वही, ७१
१३. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथम अङ्क १४. महाभारत, ७१.१३
१५. वही, ७१.१३ में उद्धृत १६. वही, ७१.१५ १७. वही, ७१.१६
१८. वही, ७१.१७ १९. श्रीमद्भागवतपुराण, ९.२०.१३
२०. महाभारत, ७१.३ २१. श्रीमद्भागवतपुराण, ९.२०.८
२२. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथमङ्क २३. वही (प्रथमङ्क)
२४. श्रीमद्भागवतपुराण, ९.२०.१४ २५. वही, ९.२०.१६
२६. वही, ९.२०.१५ २७. अथर्ववेद, अनु. ३, प्र. २४, कां. ११, मं. १८
२८. महाभारत, ७१.२१ (आदिपर्व से) २९. वही आदिपर्व, ७२.९

३०. वही, ७२.१० ३१. वही, ७२.११ ३२. वही, ७२.१२

३३. वही, ७२.१३ (में उद्धृत) ३४. वही, ७२.१४ ३५. वही, ७२.१६

३६. वही, ७२.१९ ३७. वही, ७३.१ ३८. वही, ७३.३

३९. वही, ७३.४ ४०. वही, ७३.५ ४१. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, १.२२

४२. श्रीमद्भागवत, ९.२०.१९ ४३. महाभारत, आदिपर्व, ७३.६ ४४. वही, ७३.७

४५. वही, ७३.१४ ४६. वही, ७३.१५ ४७. वही, ७३.१६

४८. वही, ७३.१७ ४९. वही, ७३.१८ ५०. वही, ७३.२१ (में उद्धृत)

५१. वही, ७३.२३ ५२. वही, ७३.२४ ५३. वही, ७३.२४ (में उद्धृत)

५४. वही, ७३.२५ ५५. वही, ७३.२९ ५६. वही, ७३.३

५७. वही, ७३.६ ५८. अभिज्ञान शाकुन्तल, अंक ७

५९. महाभारत (आदिपर्व) ७४.८ ६०. वही, ७४.८ (में उद्धृत)

६१. वही, ७४.११ ६२. वही, ७४.१२ ६३. शाकुन्तलम्, ५.२८

६४. महाभारत (आदिपर्व) ७४.१५ ६५. वही, ७४.१७ ६६. वही, ७४.१८

६७. वही, ७४.२० ६८. वही, ७४.१९ ६९. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४.१

७०. वही, ५.२६ ७१. भागवतपुराण, ९.२०.१६ ७२. वही, ९.२०.२३

७३. महाभारत, ७४.२१ ७४. वही, ७४.३७ ७५. वही, ७४.४१

७५. वही, ७४.५३ ७७. अभि. शा. ७.१८ ७८. महाभारत, ७४.५८

७९. वही, ७४.७० ८०. वही, ७४.७२ ८१. वही, ७४.७९

८२. वही, ७४.११४ ८३. वही, ७४.११५ ८४. वही, ७४.११७

८५. वही, ७४.११८ ८६. वही, ७४.१२६

– डी.ए.वी. कालेज, पिहोवा, कुरुक्षेत्र। मो. 9896217255

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

महाभारत में वर्णित-

रामोपाख्यान डॉ. पी.एल.वैद्य की दृष्टि में : एक विवेचन

- कन्हैयालाल पाराशर

मूल ग्रन्थों में आख्यानों की योजना अति प्राचीन काल से ही देखी जाती है। ऋग्वेद में प्राप्त होने वाले छोटे-बड़े आख्यानों की संख्या एक सौ के आस-पास चली जाती है।[1] इसी तथ्य पर आगे विचार प्रस्तुत करते हुए देवर्षि कलानाथ शास्त्री का मन्तव्य है कि वेद-वाङ्मय से लेकर लौकिक वाङ्मय तक साहित्य-सर्जकों की रचनाएँ, हम समीक्षकों के द्वारा समीक्षमाण-आख्यान-कथा-आख्यायिका-कथानक इत्यादि अनेक प्रकारक, विपुल संख्या में प्राचीन और मध्याकालीन संस्कृत-साहित्य में जो भी देखी जा रही हैं क्या वे आधुनिक लघुकथाओं और उपन्यासों के पूर्वज ही तो हैं? यह हो सकता है कि उनकी शैली, प्रकृति आदि निमित्त में संरक्षनात्मक भेद आजकल के कथा-उपन्यास आदि की अपेक्षा से भी हो।[2]

'आख्यान' शब्द की निष्पत्ति **आ+ख्या (कहना) आख्यान (करना)** से होती है। **आख्यायते अनेन इति आख्यानम्** आख्यान चाहे काल्पनिक भी हों, तो भी, आख्यानों में अर्थानुसन्धान प्रायः दुःसाध्य होता है किन्तु असाध्य तो कदापि नहीं।

ये आख्यान कहीं तो वस्तुतत्त्व के व्याख्यारूप होते हैं। कहीं अज्ञातघटनाघटन-परक और कहीं सर्वजनोपदेश-हेतुक।[3]

जहाँ तक महाभारत में वर्णित आख्यानो-पख्यानों की बात है तो महर्षि वेदव्यास-रचित महाभारत तो कथाओं का आकरग्रन्थ है। इसमें अनेक उपाख्यानों का समावेश हुआ है। इन सब में रामोपाख्यान की अपनी विशेषता है। महाभारत (३.२५८-२७५) के रामोपाख्यान में अठारह अध्याय एवं ७२४ श्लोक हैं। वनवास से लेकर श्रीराम के राजतिलक तक की कथा इस उपाख्यान का मुख्य विषय है। रामोपाख्यान के आरम्भिक तीन श्लोकों में सम्पूर्ण रामोपाख्यान का सार-संक्षेप भी प्रस्तुत किया हुआ है। यथा-

प्राप्तमप्रतिमं दुःखं रामेण भरतर्षभ।
रक्षसा जानकी तस्य हृता भार्या बलीयसा।।
आश्रमाद् राक्षसेन्द्रेण रावणेन विहायसा।
मायामास्थाय तरसा हत्वा गृध्रं जटायुषम्।।
प्रत्याजहार तां रामः सुग्रीवबलमाश्रितः।
बध्वा सेतुं समुंद्रस्य दग्ध्वा लङ्कां शितैः शरैः।।

महाभारत (३.२५८-२७५) के अठारह अध्यायों में वर्णित रामोपाख्यान का प्रसंग कुछ

इस प्रकार है- जिस समय जयद्रथ द्रौपदी को बलपूर्वक हरण करके ले जाता है और महाबली भीम उसे छुड़ा कर लाता है। उस समय युधिष्ठिर वहां उपस्थित महर्षि मार्कण्डेय से पूछते हैं कि क्या उनकी (युधिष्ठिर) की तरह कोई अन्य भी ऐसा अभागा महापुरुष हुआ है, जो अपने राज्य और पत्नी दोनों को गंवाकर दु:खी हुआ हो। महाराज युधिष्ठिर को महादु:खी देख कर महर्षि मार्कण्डेय दशरथनन्दन श्रीराम की करुण-कहानी सुनाकर उनको सान्त्वना देते हैं। महर्षि सुनाते हैं कि राम ने भी उनकी (युधिष्ठिर) की तरह अपने राज्य एवं पत्नी को खोया और चौदह वर्ष का वनवास भी भोगा था। रामोपाख्यान का यह वर्णन नितान्त ही अवसर के अनुकूल था।

महाभारत में वर्णित रामोपाख्यान को लेकर यह समझना उचित नहीं कि यह तो वाल्मीकि रामायण का संक्षिप्त रूप है। इस विषय में डा. पी. एल वैद्य का स्पष्टीकरण हमें मिलता है। उनका कथन है कि रामोपाख्यान तो रामायण से सदियों पुराना है तथा इतिहास का अंश होने के कारण उसमें विषय-वस्तु को अधिक विश्वसनीय रूप से वर्णित है। जबकि रामायण इतिहास पर आधारित एक काव्य होने के कारण प्राचीन रामोपाख्यान से बहुत परवर्ती है और उसके लेखक वाल्मीकि ने विषय-वस्तु को व्यापक रूप से विस्तृत तथा संशोधित किया है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि रामोपाख्यान रामायण का संक्षिप्त रूप नहीं है। क्योंकि संक्षिप्त कथानक मूलाख्यान के परिवर्द्धित रूप की अपेक्षा यथार्थ पर अधिक आधारित होना चाहिए।[४]

डा. पी. एल. वैद्य के उपयुर्क्त कथन के परिप्रेक्ष्य में महाभारत में वर्णित रामोपाख्यान और वाल्मीकि रामायण की रामकथा में साम्य और वैसम्य कुछ इस प्रकार है :-

* विश्वामित्र ऋषि द्वारा राम-लक्ष्मण को धनुर्विद्या में प्रशिक्षित किया गया इसका कोई वर्णन रामोपाख्यान में नहीं मिलता जबकि रामायण में विश्वामित्र अपने यज्ञानुष्ठान की रक्षा के लिये राम लक्ष्मण को ले जाते हैं और उन्हें धनुर्विद्या में प्रशिक्षित करते हैं। तत्पश्चात् सीता-स्वयंवर में शिवधनुष को तोड़ने पर राम-सीता का परिणय सम्पन्न होता है। लगता है यह आख्यान वाल्मीकि ऋषि की अपनी भव्य कल्पना है और इसे पूर्व से प्रचलित रामोपाख्यान में वर्णित राम कथा में उन्होंने जोड़ दिया है।

* अहल्योद्धार की कथा भी महाभारत के रामोपाख्यान में नहीं है इसे भी वाल्मीकि महाराज की कल्पना ही डा. वैद्य मानते हैं।

* रामोपाख्यान में वर्णित मिलता है कि रावण का एक पुराना मन्त्री अविध्य था। उसका तीन-चार बार नामोल्लेख हुआ है। यह मन्त्री रावण के दरबार में श्रीराम का पक्षधर था। वह वियोगिनी सीता को भी सान्त्वना देता है। सीता को वह उसके पति और देवर का कुशल-समाचार भी

प्राप्त कराता है। साथ ही, वह उसे शीघ्राति-शीघ्र रावण के बन्धनों से मुक्त भी करवा देता है। रावण को भी वह परामर्श देता है कि उसे सीता की हत्या करने से बचना चाहिए। रावण-वध के पश्चात् यही अविध्य सीता जी को श्रीराम के शिविर का मार्ग भी दिखाता है। श्रीराम अपने राजतिलक के समय अयोध्या में शत्रु पक्ष के इस मन्त्री अविघ्य को पुरस्कृत भी करते हैं। त्रिजटा का उल्लेख तो रामोपाख्यान और रामायण दोनों में हुआ किन्तु रामायण में अविध्य की चर्चा नहीं मिलती।

* रामोपाख्यान में तो कुम्भकर्ण का वध लक्ष्मण करता है। किन्तु रामायण में राम स्वयं कुम्भकर्ण का वध करते हैं।

* रामोपाख्यान में हनुमान जी द्वारा संजीवनी बूटी द्रोणाचल से लाकर लक्ष्मण के प्राण बचाने का उल्लेख नहीं। निकट से प्राप्त बूटियों के द्वारा यह कार्य सुग्रीव ही करवा देता है। रामायण में, द्रोणाचल पर्वत को संजीवनी बूटी सहित उठाकर हनुमान लाये और लक्षमण के प्राण बचाये, यह श्रेय हनुमान को दिया। यह सूझ-बूझ तो वाल्मीकि की अपनी स्वयं की है। इस कल्पना ने हनुमान जी के गौरव को चार चांद लगाये हैं।

* रामोपाख्यान में वर्णन है कि युद्ध में अदृश्य राक्षसों और अन्य प्राणियों को देखने की शक्ति कुबेर द्वारा श्रीराम को दी गई। तदर्थ कुबेर ने श्रीराम के पास अभिमन्त्रित जल भेजा था। रामायण में इस का उल्लेख नहीं।

* रामोपाख्यान में अविध्य सीता व राम का पुनिर्मिलन कराता है जबकि रामायण में राम ही हनुमान को रावण के महलों में भेजते हैं। सीता को राम सन्देह की दृष्टि से देखकर कहते हैं-सीते तुम स्वतन्त्र हो। स्वेच्छा से जहाँ तुम्हारी इच्छा जाओ। सीतात्याग की यह घटना रामोपाख्यान और रामायण दोनों में समान रूप से है।

* अपने सतीत्व का प्रमाण देने हेतु सीता ने अग्निप्रवेश किया था इसकी चर्चा रामोपाख्यान में नहीं मिलती। सीता की अग्नि-परीक्षा की घटना भी महर्षि वाल्मीकि की अपनी कल्पना है।

रामोपाख्यान के अनुसार तो पुनर्मिलन - वेला में राम भार्या सीता को कठोर वचन कहते हैं-

सुवृत्तामसुवृत्तां वाप्यहं त्वामद्य मैथिलि।
नोत्सहे परिभोगाय श्वावलीढं हविर्यथा।।[५]

अपने प्राणनाथ के ये कठोर वचन सुनकर सीता अचेत होकर कटे वृक्ष की तरह भूमि पर गिर पड़ती है। तत्काल ही देवलोक से देवगण, सप्तर्षि, ब्रह्मा और स्वर्गवासी दशरथ घटनास्थल पर आ पहुँचते हैं। उनके आते ही सीता सचेतन होकर उठ वैठती है। वह भी राम से दृढ़ता-पूर्वक कहती है-

राजपुत्र न ते कोपं करोमि विदिता हि मे।
गतिः स्त्रीणां नराणां च श्रृणु चेदं वचो मम।।
अन्तश्चरति भूतानां मातरिश्वा सदागतिः।
स मे विमुञ्चतु प्राणान् यदि पापं करोम्यहम्।[६]

तब सीता के साक्षी बनकर वायु देवता राम से कहते हैं –

भो भो राघव सत्यं वै वायुरस्मि सदागतिः।
अपापा मैथिली राजन् संगच्छ सह भार्यया।।[७]

अब तो वहां खड़े अन्य सभी देवगण वायु देवता के स्वर में स्वर मिलाते हुए कह उठते हैं–

नात्र शङ्कर त्वया कार्या प्रतीच्छेमां महाद्युते।[८]

देवगण के निर्णय देने के अनन्तर महाराज दशरथ श्रीराम को अयोध्या लौटने और वहाँ राज्य शासन संभालने की आज्ञा देते हैं। यह सब होने पर श्रीराम पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो कर सदल-बल अयोध्या लौट आते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जयद्रथ द्वारा द्रौपदी-हरण की घटना से दु:खित युधिष्ठिर को मार्कण्डेय ऋषि द्वारा सीता-हरण से दु:खित राम की कथा सुनाकर सान्त्वना देना सर्वथा प्रासंगिक है अवसरोचित है। महाभारत में वर्णित रामोपाख्याण को प्रक्षिप्तांश मानने में भी कोई सबल प्रमाण तो है नहीं। रामोपाख्यान को लेकर डा. पी. एल. वैद्य का कथन है कि महाभारत का एक सही भाग होने के कारण यह वाल्मीकि के काव्य से भी अधिक प्राचीन है एवं महाभारत एक ऐतिहासिक ग्रन्थ भी है।[९] डा. वैद्य का यह भी मानना है कि वाल्मीकि ऋषि ने महाभारत के नीरस रामोपाख्यान वर्णन को अधिक सरस और प्रभावशाली बना कर प्रस्तुत किया है। सीता की अग्नि परीक्षा जो रामायण में वर्णित है यह एक सर्वथा हृदयग्राही उत्तम कल्पना है। अग्नि प्रत्यक्ष है जबकि वायु अप्रत्यक्ष तभी तो महाभारत में वर्णित वायु देवता द्वारा सीता की पवित्रता का परीक्षण वाला दृश्य वाल्मीकि रामायण के अग्नि परीक्षा वाले वर्णन के सामने निष्प्रभ दिखाई देता है।[१०] इस प्रकार ऐतिहासिक ग्रन्थों में वर्णित शुष्क घटनाओं को सरस रूप में अपने काव्य में प्रस्तुत करना कविधर्म और काव्य-मार्ग का उचित अनुसरण ही तो है। आनन्दवर्द्धन ने ध्वन्यालोक के तृतीय उद्योत में यही उपदेश तो किया है–

इतिवृत्तवशायातां कथञ्चिदसाननुगुणां स्थितिं त्यक्त्वा पुनरुत्प्रेक्ष्यप्यन्तराभीष्टर-सोचितकथोन्नयो विधेयः। यथा कालिदास प्रबन्धेषु।[११]

उपयुर्क्त सन्दर्भ का स्पष्ट निर्देश कि केवल इतिवृत्त जो परम्परा प्राप्त है उसका निर्वाहमात्र ही कवि का धर्म नहीं है। इतिहास ग्रन्थों से ही इतिवृत्त निर्वाह तो सम्पन्न हो जाता है। पूर्व से प्राप्त इतिवृत्त में अपनी ओर से कल्पना करके भी रस-निर्वाह करना चाहिए। इतिवृत्त तो प्राय: शुष्क-नीरस होते है। कल्पना (उत्प्रेक्षा) द्वारा जो प्रकरण को सजाया जाता है, यह सब तो कवि आदर्श स्थापित करने के लिए सब कुछ करता है। दुष्यन्त को आदर्श सम्राट् सिद्ध करने, उसे निर्दोष सिद्ध करने के लिए ही अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक में दुर्वासा के शाप की कल्पना की गई। जो सर्वथा नाटकौचित्य ही है।

यही वाल्मीकि ने भी किया रामोपाख्यान में कल्पना का रंग भर कर उसे काव्य सौन्दर्य का भव्य रूप दे दिया। अब रही बात यह कि महाभारत का रामोपाख्यान पहले अथवा वाल्मीकि-रामायण। इस विषय में विद्वानों में नाना मतभेद हें। डा. पी. एल. वैद्य के मत में रामोपाख्यान रामायण से सदियों पुराना है। तथा इतिहास का अंश होने के कारण उसमें विषयवस्तु अधिक विश्वसनीय रूप से वर्णित है। जबकि, रामायण इतिहास पर आधारित एक काव्य होने के कारण प्राचीन रामोपाख्यान से बहुत परवर्ती है।

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने भारत सावित्री शीर्षक अपने ग्रन्थ में पाश्चात्य विद्वानों के मत इस प्रकार प्रस्तुत किये हैं- ''याकोबी का कहना था कि रामोपाख्यान वाल्मीकि की रामायण का संक्षिप्त रूप है। हॉपकिन्स दोनों के स्रोत पृथक् मानते थे। वेवर में सर्वप्रथम १८७० में इस प्रश्न पर विचार किया पर निश्चित मत प्रकट नहीं किया। महाभारत के सम्पादक श्री सुकथनकर कथाभेद होते हुए भी दोनों में पक्के शब्द-साम्य के ९६ उदाहरण देते हुए रामोपाख्यान की रचना वाल्मीकि रामायण के आधार पर मानते हैं।[१२]

प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रों के आख्यान कर्त्ता श्री देवदत्त जी पट्टनायक का कथन है- आख्यान का कभी भी शाब्दिक अर्थ नहीं, बल्कि प्रतीकात्मक अर्थ लिया जाना चाहिए। इन कथाओं और प्रतीकों के माध्यम से हमारे पूर्वतों ने अत्यन्त गूढ सन्देश दिए हैं।[१३] प्रस्तुत रामोपाख्यान में महाभारत का प्रमुख पात्र द्रोपदी-हरण के कारण, भार्या-वियोगी है। दु:ख का प्रतीक बना हुआ है। उसे अन्य पात्र राम की सीताहरण की व्यथा-कथा सुनाकर महर्षि मार्कण्डेय ने सान्त्वना दी है। कांटे से ही कांटा निकाला जाता है। उसी प्रकार, दु:खी व्यक्ति को उसके दु:ख से अधिक दु:खी व्यक्ति की व्यथाकथा सुनकर दु:ख को बाँटने की प्रथा लोक में आज भी प्रचलित है।

---

१. वैदिक आख्यानों की प्रवृत्ति, पृ. १, प्रो. भवानी लाल भारतीय प्रकाशक: महर्षि दयानन्द वैदिक शोध पीठ पंजाब विश्वविद्यालय, चडीगढ़।
२. आरख्यान वल्लरी, आमुख पृ. ४, देवर्षि कलानाथ शास्त्री।
३. वैदिक आख्यानों की प्रकृति, पृ. ४०, डा. धर्मानन्द प्रका. महर्षि दयानन्द वैदिक शोधपीठ, चडंगीढ़।
४. विश्वज्योति, वर्ष २० सं. ३ व ४, पृ. १५५ ५. महाभारत, ३, २७५, १३
६. वही, ३, २७५, २२-२३ ७. वही, ३, २७५, २६ ८. वही, ३, २७५, ३४
९. वि. ज्यो, २०, ३-४ पृ., १५५ १०. वही, पृष्ठ ५८ कालम २
११. आनन्दबर्द्धन : ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत १२. भारत सावित्री (रामोपाख्यान) पृ. २९५
१३. देवदत्त पट्टनायक, दैनिक भास्कर पंजाब, रविवार ३ मार्च २०२४ रसरंग वाला प्रथम पृष्ठ।

- वी. वी. बी. आई. एस एण्ड आई. एस. पंजाब विश्वविद्यालय पटल, साधु आश्रम, होशियारपुर।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७३, सं.१-२
अप्रैल-मई ,२०२४

महाभारत की गीता में श्रीकृष्ण की विश्व दर्शन लीला

- धर्मपाल साहिल

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अपने अनन्य भक्त अर्जुन को अपने विराट स्वरूप का विश्वदर्शन करा कर समस्त विश्व को यह अहसास कराया है कि समस्त ब्रह्माण्ड उनके भीतर ही मौजूद है। जो कुछ है वह माया मात्र है। वास्तव में श्रीकृष्ण अपने जन्म से ही बाललीला, रासलीला आदि कई प्रकार की लीलाओं द्वारा अपने भक्तों को अभीभूत करते रहे हैं। महाभारत में कुरुक्षेत्र में युद्ध के मैदान में पांडवों-कौरवों की आमने-सामने युद्ध हेतु तत्पर सेनाओं के मध्य श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दुविधा की दलदल से बाहर निकालने हेतु उच्चारित गीता ज्ञान तथा उस समय अर्जुन के आग्रह पर अपने विराट स्वरूप के दर्शन कराने वास्तव में श्रीकृष्ण लीला के अनेक रूपों में सर्वोत्कृष्ट रहस्यमयी एवं विलक्षण रूप है। अपना यह भव्य स्वरूप दिखाने से पूर्व उन्होंने अर्जुन को दिव्य चक्षु प्रदान किये। कुरुक्षेत्र में उपस्थित अन्य योद्धा व सेना अंग श्रीकृष्ण को इस विश्वदर्शन स्वरूप के लाभ से वंचित रहे। यह सौभाग्य केवल अर्जुन के हिस्से में ही आया।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण की इस विश्व दर्शन लीला का पाठ करते हुए जितना आनंद आता है, आत्मीय सन्तुष्टी प्राप्त होती है, आत्मा-परमात्मा तथा सृष्टि की माया का ज्ञान होता है, उतने ही इसके अर्थ गहरे व रहस्यमयी होते चले जाते हैं। गीता में इस विश्वदर्शन प्रसंग में इस लीला का यथार्थ रूप कैसा है इसे समझ पाना अपने आप में किसी गूढ़ पहेली को सुलझाने से कम नहीं है। निश्चित तौर पर जब संजय ने राजा धृतराष्ट्र को श्रीकृष्ण के इस विराट स्वरूप का वर्णन अपनी दिव्य दृष्टि से प्राप्त कर उसका वर्णन किया, उससे भी पूर्व श्री व्यास द्वारा श्रीमदभागवद्गीता का यह विश्वदर्शन कांड रचते हुए उसी दिव्य दृष्टि फलस्वरूप श्रीकृष्ण के विश्वरूप दर्शन का अनुभव किया होगा तभी तो वह इस अभूतपूर्व दर्शनलीला का साक्षात् वर्णन कर पाए होगें।

श्रीमदभगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय में अर्जुन श्रीकृष्ण को उनका ईश्वरीय रूप दिखाने का आग्रह करते हैं तब श्रीकृष्ण विश्वदर्शन लीला के अंतर्गत ही कहते है, हे अर्जुन! मैं सभी प्राणियों में आत्मा हूँ, मैं ही समस्त प्राणियों का आदि, मध्य और अन्त हूँ। आदित्यों में मैं विष्णु, ज्योतियों में सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्रमा, देवताओं में इन्द्र हूँ। प्राणियों में चेतना, रुद्रों में शंकर, पर्वतों में सुमेर पर्वत, सेनापतियों में स्कन्द, देवर्षियों में नारद, घोड़ों में उच्चैश्रवा नामक घोड़ा, हाथियों में श्रेष्ठ ऐरावत हाथी हूँ। मनुष्यों में, मैं राजा, दैत्यों में

प्रह्लाद, पक्षियों में गरुड़, सर्पों में वासुकि, शस्त्रधारियों में राम, नदियों में भागीरथी गंगा, विद्याओं में आत्म विद्या तथा सृष्टि का आदि अन्त और मध्य मैं ही हूँ और अविनाशी काल भी मैं ही हूँ तब कहीं जा कर अर्जुन को श्रीकृष्ण के साक्षात् विश्वदर्शन होते हैं। वह मानव स्वरूप में ही श्रीकृष्ण के इस दिव्य स्वरूप के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर पाते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण स्वयं ही अपने भक्त अर्जुन पर यह अनुकम्पा करते हुए स्पष्ट करते हैं, हे अर्जुन, तुम मेरे नाना प्रकार के वर्ण और आकार तले सैंकड़ों-हजारों रूपों में मुझे देख सकोगे। आदित्यों, वसुओं, रूद्रों, अश्विन कुमारों, मरुद्गणों तथा बहुत से पहले न देखे हुए आश्चर्यभय स्वरूप मुझमें देखो। मेरे शरीर में एक ही जगह स्थित समस्त चराचर जगत और इसके अतिरिक्त भी जो कुछ अन्य देखना चाहते हो, मेरे विराट स्वरूप में अपने दिव्य चक्षुओं से देखो। समस्त विभूतियों एवँ ब्रह्मांड के दर्शन करो। (गीता-१८/५-८)

वेदों के अनुसार जो आत्मा मनुष्य शरीर में मौजूद है वही आत्मा ब्रह्माण्ड में भी व्याप्त है। शायद इसी परम सत्य को स्पष्ट व साकार करने हेतु ही श्रीकृष्ण ने अपने विराट स्वरूप के दर्शन अर्जुन को कराए जिसने अनेकों मुख, अनेकों नेत्रों, अनेकों भुजाओं, अनेक दिव्य शस्त्रों को धारण किये, अनेक दिव्य मालाएँ धारण किये, दिव्य गंध का लेप किये, प्रकाश का अनंत स्रोत, और जो हजारों सूर्यों के प्रकाश वाला है। इसी स्वरूप में अर्जुन को ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शंकर, अन्य देवी-देवता, पितर, यक्ष, राक्षस, सिद्ध आदि उसी विराट स्वरूप में नज़र आए। इस प्रकार वेदों में वर्णित पुरुष सूक्त में परमात्मा के दिव्य दर्शन के उपरान्त भगवान की स्तुति कर उनसे युद्ध में विजयश्री का आर्शीर्वाद प्राप्त किया। श्रीकृष्ण ने उनके विराट स्वरूप को देखकर भयभीत हुए अर्जुन को भय मुक्त किया। अर्जुन की दुविधाओं, शंकाओं का निवारण किया। अपने अकाट्य तर्कों से बुद्धि तथा बल युक्त किया। अर्जुन के मनोबल को श्रेष्ठता प्रदान की। यही तो श्रीकृष्ण की दिव्य लीला है। उनका विश्वदर्शन है। विश्व स्वरूप है।

श्रीकृष्ण का यह कथन, हे अर्जुन! इस ब्रह्माण्ड में मुझसे उत्कृष्ट अन्य कुछ भी नहीं है। माला के सूत्र में पिरोये हुए मणियों के समान यह समस्त ब्रह्माण्ड मुझमें पिरोया हुआ है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से समस्त विश्व को यह शिक्षा दी कि मैं ही सब कुछ हूँ, यह सारा ब्रह्माण्ड मेरा ही स्वरूप है। मेरे अतिरिक्त जो भी प्रतीति हो रही है वह माया भ्रम है। मैं भक्ति द्वारा ही प्राप्य हूँ।

यह भी सत्य है कि श्रीकृष्ण ने भक्त अर्जुन के अतिरिक्त इसी विश्वरूप के दर्शन गोकुल में माता यशोदा को, कौरवों की राज्य सभा में भीष्म आदि को तपोवन में मुनिगणों को, ऋषियों को आश्रमों में, गुरुभक्त मुनिश्रेष्ठ श्री उत्तङ्क को भी इसी रूप में दर्शन कराये हैं। यहां तक कि राजा धृतराष्ट्र की प्रार्थना पर भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें भी दिव्य दृष्टि

प्रदान कर अपना विराट स्वरूप दिखाया है। यहां यह बात भी विचारणीय है कि भगवान श्रीकृष्ण ने समय-समय पर जो अपने विराट स्वरूप दिखाए क्या वह सभी एक जैसे ही थे। माता यशोदा ने उनके बालरूप में, गोपियों ने किशोर रूप में, कौरव सभा में दूत रूप में, कुरुक्षेत्र में सारथि रूप में जिस विश्व रूप के दर्शन कराए हैं वह देखने, महसूस करने तथा अनुभव में अलग-अलग प्रतीत हो सकते हैं, पर वे वास्तव में एक ही विराट स्वरूप रहे हैं। बस अन्तर यही है कि देखने वाले ने इस विराट स्वरूप को अप्रमेय होने से तथा आवश्यकतानुसार अलग-अलग दृष्टिकोण से भिन्न-भिन्न स्तरों पर विभिन्न परिस्थितियों में ग्रहण किया। मगर जितना विस्तारपूर्वक, जितने अर्थों, पर्तों, आयामों, सूक्ष्मता, रहस्यमयी से कुरुक्षेत्र में अर्जुन के सन्दर्भ में श्रीकृष्ण के विराट विश्वदर्शन की व्याख्या व चित्रांकन श्री व्यास जी ने किया है, इतना अन्यत्र दिखाई नहीं देता। श्रीमदभगवद्-गीता के ग्यारहवें अध्याय में २० से ३० श्लोक तक अर्जुन, श्रीकृष्ण का विराट स्वरूप देखकर सहम व डर से अंत में उग्र होते हुए भगवान श्रीकृष्ण को नमस्कार करके, उन्हें प्रसन्न होने की प्रार्थना करते हैं, उस समय श्रीकृष्ण कहते हैं, मैं काल हूँ, सब का संहार करने में प्रवृत हुआ हूँ। ये सब मेरे द्वारा मारे गये हैं तू निमित्त मात्र बन।'' बस यहीं पर अर्जुन श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए अपनी अवज्ञाओं हेतु पश्चाताप करते हुए क्षमा मांगते हैं तथा श्रीकृष्ण को पुन: उनके सौन्दर्य-माधुर्य युक्त चक्रधारी-गदाधारी रूप में लौटने का अनुगय करते हैं। भगवान कृष्ण अपना भयंकर रूप यहीं रोक देते हैं, अर्जुन की इच्छा स्वरूप भगवान अपना विराट स्वरूप इससे आगे नहीं दिखाते। वह अर्जुन को आश्वासन भी देते हैं, मैंने प्रसन्न होकर तुमको अपना यह भयंकर, प्रभावशाली, महिमामय स्वरूप दिखाया है, जो अब तक किसी ने नहीं देखा तथा न आगे कोई देख सकता है। तू मेरे इस घोर रूप को देखकर व्याकुल मत हो। तेरी इच्छानुसार मैं तुझे अपना वही चतुर्भज रूप दिखाता हूँ। तू इसे देख। इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण का विश्वदर्शन प्रसंग समाप्त होता है। यहां भी कई विद्वानों, शोधार्थयों, मनीषियों ने भगवान श्रीकृष्ण के इस विश्वरूप दर्शन पर कई प्रकार के प्रश्न, तर्क, शंकाएं प्रस्तुत की हैं। इन सब का समाधान श्रीकृष्ण के वचनों में निहित है। जैसे जैसे हम इस गूढ़ रहस्य में उतरते जाते हैं, कई सवालों का जवाब, कई शंकाओं के समाधान स्वत: ही होते जाते है, ये उत्तर व समाधान भी हमें स्वयं ही खोजने होगें, अब हमारे समक्ष न श्री व्यास हैं, न अर्जुन न अन्य कोई जिसने श्रीकृष्ण की इस विश्वदर्शन लीला का साक्षात दर्शन किया हो फिर उसे स्वरबद्ध व लिपिबद्ध किया हो। वह त्रिकालज्ञ है। सर्वज्ञ है। अनिश्चित एवं निश्चित सब है, भूत वर्तमान व भविष्य उपस्थित है तो वही इन प्रश्नों और शंकाओं का समाधान कर सकता है।

- पंचवटी, एक्ता इन्क्लेव - 2, होशियारपुर।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७३, सं.१-२
अप्रैल-मई,२०२४

अहिंसाविषयक रुरु-डुण्डभ संवाद

- देवीसिंह

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति सम्पूर्ण विश्व में पुराकाल से अद्वितीया रही है, क्योंकि भारतीय वैदिक एवं लौकिक साहित्य विश्वपटल पर अपनी ऐसी पहचान बनाए हुए है, जिसका अनुकरण एवं अनुसरण विदेशी सभ्यताएं अद्यतन कर रही हैं। भारत का वैदिक वाङ्मय तो प्रबल है ही जिसके अन्तर्गत वेद, वेदाङ्ग, आरण्यक, उपनिषद् इत्यादि वैदिक साहित्य का समावेश है। इसके साथ-साथ लौकिक साहित्य भी भौतिक जीवन-यापन करने के लिये सामान्यजन को एक साहित्यिक सम्बल प्रदान करता है। आदि मुनि महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण महाकाव्य के अनन्तर भारतीय साहित्य के इतिहास में एक ऐसा महाकाव्य परिगणित किया जाता है जिसको 'शतसाहस्री' अर्थात् महाभारत महाकाव्य के नाम से जानते हैं। यह महाकाव्य तीन क्रमिक सोपानों में विभक्त किया गया है- जय, भारत और महाभारत। इस ग्रन्थ का प्राचीन नाम 'जय' था। महाभारत के मंगलाचरण के रूप में यह प्रसिद्ध श्लोक है-

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवी सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्।।[१]

प्रकृत श्लोक से स्पष्ट है कि महर्षि वेदव्यास ने जिस ग्रन्थ में नारायण, नर और सरस्वती देवी को नमस्कार किया है, उसका नाम 'जय' है, जिसका सूत्रपात पाण्डवों की विजयके कारण हुआ। यही 'जय' नामक ग्रन्थ महाभारत महाकाव्य का मूल प्रतीत होता है- **जयो नामेतिहासोऽयम्...।**[२] ऐसा भी माना जाता है कि इस 'जय' नामक काव्य में अट्ठासी सौ श्लोक थे। महर्षि वेदव्यास से गणेश, जैमिनी, वैशम्पायन और शुकदेव ने जो कथा सुनी वही 'जय' नाम से प्रसिद्ध है। तदनन्तर वैशम्पायन ने आगे जनमेजय और रोमहर्षण जो कथा सुनाई वह 'भारत' नामक ग्रन्थ के नाम से प्रसिद्ध हुई, जिसमें चौबीस हजार श्लोक थे। आगे चलकर रोमहर्षण ने उग्रश्रवा (सौती) को और सौति ने शौनक को जो कहानी सुनाई उसमें अनेक आख्यान-उपाख्यानों का समावेश होने के कारण यह ग्रन्थ चतुर्गणित होकर एक लाख श्लोकों वाला बन गया, जो 'महाभारत' महाकाव्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महर्षि वेदव्यास का यह कथन सर्वथा समीचीन एवं प्रसिद्ध प्रतीत होता है, जिसमें कहा गया है-

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।[3]

अर्थात् हे भरतर्षभ! धर्म-अर्थ काम-मोक्ष इत्यादि सभी विषयों का समावेश इस महान् ग्रन्थ में है, क्योंकि जो कुछ इसमें लिखा गया है वह अन्य ग्रन्थों में भी मिलेगा। इसके अतिरिक्त जो कुछ इसमें नहीं है वह अन्यत्र भी दुर्लभ है। **इदं हि वैदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम्।**
श्रव्यं श्रुतिसुखं चैव पावनं शीलवर्धनम्।।[4]

यह ग्रन्थ वेदों के समान पवित्र और उत्तम है, जिसका श्रवण सुखदायक है। इसके सुनने से अन्तःकरण की पवित्रता एक उत्तमशील स्वभाव की वृद्धि होती है। महाभारत अनेक आख्यान-उपाख्यानों के संग्रह के कारण ही एक विशाल महाकाव्य बन सका। इसमें उल्लिखित आख्यान तात्कालिक कथावस्तु को दर्शाते हुए अनेक प्रकार के उपदेशों का भी संग्रह है। इसी क्रम में महाभारत के आदिपर्व के अन्तर्गत एक बहुत प्रख्यात संवाद उपलब्ध होता है, जिसका नाम है- 'रुरु-डुण्डुभ संवाद'। इस संवाद में एक अहिंसापारक वृतान्त प्राप्त होता है। इस संवाद को विस्तृतरूपेण जानने के पूर्व इसकी पृष्ठभूमि को जानना भी आवश्यक है। आदिपर्व के चतुर्थ अध्याय से लेकर द्वादशतम अध्याय पर्यन्त 'पौलोमपर्व' के अन्तर्गत आता है। इसी संभाग में रुरु-डुण्डुभ संवाद है, जो प्रकृत लेख का मुख्य विषय भी है। ऐसा उल्लेख उपलब्ध होता है कि किसी समय नैमिषारण्य में शौनक ऋषि के आश्रम में लोमहर्षणपुत्र सूतनन्दन उग्रश्रवा (सौती) आए जो एक बहुत कुशल कथावाचक थे।[5] शौनक ऋषि के कहने पर उन्होंने भृगुवंश का परिचय देते हुए कहा कि स्वयम्भू ब्रहमा ने वरुण के यज्ञ में महर्षि भृगु को अग्नि से उत्पन्न किया, जिनके पुत्र च्यवन हुए।[6]

च्यवनस्य दायादः प्रमतिर्नाम धार्मिकः।
प्रमतेरप्यभूत् पुत्रो घृताच्यां रुरुरित्युत।।
रुरोरपि सुतो जज्ञे सुनको वेदपारगः।
प्रमदवरायां धर्मात्मा तव पूर्वपितामहः।।[7]

च्यवन के पुत्र का नाम प्रमति था जो धार्मिक थे। प्रमति और घृताची नामक अप्सरा से रुरु नामक पुत्र का जन्म हुआ। रुरु का पुत्र शुनक था, जिसका जन्म प्रमदवरा से हुआ। शुनक ही ऋषि शौनक के पितामह थे। भार्गव वंश का वर्णन करते हुए उग्रश्रवा कहते हैं कि भृगु ऋषि की पत्नी पुलोमा के गर्भ से च्यवन ऋषि के उत्पत्ति हुई।[8] च्यवन और उनकी पत्नी सुकन्या के गर्भ से प्रमति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रमति और घृताची अप्सरा से रुरु पुत्र उत्पन्न हुआ।[9] रुरु और उसकी पत्नी प्रमदवरा का वृतान्त रोचक है, जो इस प्रकार है- एक बार स्थूलकेश नामक ऋषि प्रणिहित में रत थे। गन्धर्वराज विश्ववसु ने अप्सरा मेनका के गर्भ से एक पुत्री को उत्पन्न किया। मेनका उस

पुत्री को स्थूलकेश ऋषि के आश्रम के पास छोड़कर चली गयी। ऋषि स्थूलकेश ने उस दिव्या शोभायुक्त कन्या को देखा और अपने आश्रम में लाकर उसका पालन-पोषण करने लगे।[१०] वह बालिका दिव्य बुद्धि, रूप एवं सभी उत्तम गुणों से युक्त होने के कारण सभी प्रमदाओं (स्त्रियों) में सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होती थी। इसीलिए ऋषि स्थूलकेश ने उसका नाम 'प्रमदवरा' रखा-

प्रमदाभ्यो वरा सा तु सत्त्वरूपगुणान्विता।
ततः प्रमदवरेत्यस्या नाम चक्रे महामुनिः।।
तामाश्रमपदे तस्य रुरुर्दृष्ट्वा प्रमदवराम्।
बभूव किल धर्मात्मा मदनोपहतस्तदा।।[११]

महात्मा रुरु ने जब उस रूपवती प्रमदवरा को देखा तो वह काम के वशीभूत होकर उसके प्रति आकृष्ट हो गया। तदनन्तर रुरु ने मित्रों द्वारा पिता प्रमति को कहलवाया। प्रमति ने ऋषि स्थूलकेश के आश्रम में जाकर प्रमदवरा को रुरु के साथ परिणय-बन्धन के लिये याचना की। ऋषि स्थूलकेश ने प्रमदवरा का रुरु के लिये वाग्दान करके उसका विवाह उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र के शुभमुहूर्त में निश्चित कर दिया।[१२] प्रमदवरा सखियों के साथ घूमते हुए जब विपिनमार्ग से जा रही थी तो एक कृष्ण सर्प ने उसे डंस लिया जिससे वह अचेतन हो गई। यह बात जब रुरु को पता चली तो वह बहुत उदास हो गया। जब सभी ऋषिगण करुणावश प्रमदवरा के लिये क्रन्दन कर रहे थे तो रुरु अत्यन्त आर्त होकर वहां से बाहर आ गया।[१३] रुरु प्रियतमा प्रमदवरा के प्रेमकारुण्य के वशीभूत होकर सभी इष्टदेवों से आर्तनाद करते हुए प्रार्थना करने लगा-

यदि दत्तं तपस्तप्तं गुरवो वा मया यदि।
सम्यगाराधितास्तेन संजीवतु मे प्रिया।।
यथा च जन्मप्रभृति यतात्माहं धृतव्रतः।
प्रमदवरा तथा ह्येषा समुत्तिष्ठतु भामिनी।।
कृष्णे विष्णौ हृषीकेशे लोकेऽसुविद्विषि।
यदि मे निश्चला भक्तिर्मम जीवतु सा प्रिया।।[१४]

रुरु कहता है कि यदि मैं दानी हूँ, तपस्वी हूँ, गुरुसेवक हूँ, संयमी ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन करने वाला हूँ, असुरों का नाश करने वाले, इन्द्रियों के स्वामी जगदीश्वर एवं सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्ण में मेरी अविचल भक्ति हो तो मेरी यह कल्याणी प्रमदवरा जीवित हो जाए। इस प्रकार जंगल में दुःखी हृदय से विलाप करते हुए रुरु से देखकर एक देवदूत उसको कहता है कि प्रमदवरा की आयु पूर्ण हो चुकी थी। इसलिए तुम्हें शोकमग्न नहीं होना चाहिए, परन्तु यदि तुम अपनी आयु का आधा भाग प्रमदवरा के लिए दे दो तो तुम्हारी प्रमदवरा जीवित हो जाएगी। रुरु के द्वारा अपनी आधी आयु अपनी प्रियतमा के लिए दे दिए जाने पर प्रमदवरा जीवित हो जाएगी। इसके बाद दोनों (रुरु और प्रमदवरा) परिणय सूत्र में बन्धकर आनन्दपूर्वक रहने लगे।[१५] चूँकि प्रमदवरा को सर्प ने डंस लिया था इसलिए रुरु ने कमल-केसर की कान्ति वाली उस दुर्लभ भार्या को पुनः पाकर सर्पों

के विनाश का निश्चय कर लिया–

स लब्ध्वा दुर्लभां भार्यां पद्मकिञ्जल्कसुप्रभाम।
व्रतं चक्रे विनाशाय जिह्मगानां धृतव्रतः।।[१६]

रुरु जहां भी सर्पों को देखता क्रोध में भरकर डंडा लेकर उनको मारने लग जाता। एक दिन वह एक विपिन से गुजर रहा था तो वहां पर उसने डुण्डुभ जाति के एक बूढे सर्प को देखा। क्रोधवश रुरु ने डण्डा उठाकर जैसे ही उस सर्प पर प्रहार करने लगा वैसे ही मानववाणी में वह डुण्डुभ बोला– हे तपोधन! मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया, फिर भी तुम क्रोधावेश में भरकर मुझे मार रहे हो–

स कदाचिद् वनं विप्रो रुरुरभ्यागमन्महत्।
शयानं तत्र चापश्यद् वयसान्वितम्।।
ततः उद्यम्य दण्डं स कालदण्डोपमं तदा।
जिघांसुः कुपितो विप्रस्तमुवाचाथ डुण्डुभः।।
नापराध्यामि ते किञ्चिदहमद्य तपोधन।
संरम्भाच्च किमर्थं मामभिहंसि रुषान्वितः।।[१७]

रुरु कहता है कि हे सर्प! मेरी प्राणप्रिया भार्या को सांप ने डंस लिया था तब से ही मैंने प्रण किया है कि मैं सर्प को देखते ही उसे मार दूंगा। डुण्डुभ कहता है कि हे विप्रवर! वे दूसरे ही सांप होते हैं, जो मनुष्यों को डंस लेते हैं। अतः तुम्हें सांपों की आकृतिमात्र से ही उनको नहीं मारना चाहिए।[१८] डुण्डुभ कहता है कि बेचारे डुण्डुभ जाति के सर्प अर्थ भोगने में तो सभी सर्पों के साथ एक हैं परन्तु उनका स्वभाव दूसरे सर्पों से भिन्न है। तु धर्मज्ञ हो, अतः तुम्हें डुण्डुभों की हत्या नहीं करनी चाहिए–

एकानर्थान् पृथगर्थानेकदुःखान् पृथक् सुखान्।
डुण्डुभान् धर्मविद् भूत्वा न त्वं हिंसितुवमर्हसि।।[१९]

डुण्डुभ सर्प की बात सुनकर रुरु ने उसे न मारकर उससे पूछा– हे भुजंग! तुम कौन हो और इस विकृत सर्प योनि में कैसे आए? डुण्डुभ कहता है कि हे रुरु! मैं पूर्वजन्म में सहस्रपाद नामक ऋषि था, किन्तु एक ब्राह्मण के शाप से मुझे इस सर्प योनि में आना पड़ा। रुरु कहता है कि उस ब्राह्मण ने तुम्हें शाप क्यों दिया और अभी कब तक तुम्हें इस सर्प योनि में रहना पड़ेगा?[२०] डुण्डुभ कहता है कि पूर्वकाल में 'खगम' नामक ब्राह्मण जो मेरा मित्र था, तपस्वी होकर भी कठोर वचन बोला करता था। एक दिन जब वह अग्निहोत्र यज्ञ कर रहा था तो मैंने मजाक में कुछ तिनकों का सर्प बनाकर उसे डरा दिया, जिसके कारण वह भय से बेहोश हो गया। होश में आने पर उस कठोरव्रती तपस्वी ने क्रोध में भरकर शाप देते हुए कहा कि तूने मुझे डराने के लिए जैसा शक्तिहीन सर्प बनाया है, मेरे शापवश तुझे भी ऐसा ही शक्तिहीन सर्प बनना पड़ेगा।[२१] जब मैंने उस खगम ब्राह्मण से इस शापमुक्ति का उपाय पूछा तो वह कहने लगा–

उत्पत्स्यति रुरुर्नाम प्रमतेरात्मजः शुचिः।
तं दृष्ट्वा शापमोक्षस्ते भविता नचिरादिव।।
सत्वं रुरुरिति ख्यातः प्रमतेरात्मजोऽपि च।

स्वरूपं प्रतिपद्याहमद्य वक्ष्यामि ते हितम्।।[22]

भविष्य में महर्षि प्रमतिपुत्र रुरु के दर्शन से तुम्हें इस रूप से मुक्ति मिल जाएगी। मुझे लग रहा है तुम प्रमतिपुत्र रुरु ही हो, ऐसा कहकर डुण्डुभ ने अपना वास्तविक स्वरूप धारण करके रुरु को अहिंसा का उपदेश देते हुए कहा- सभी प्राणियों में हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! अहिंसा सबसे उत्तम धर्म है। अत: ब्राह्मण को समस्त प्राणियों में से किसी की भी, कभी भी और कहीं भी हिंसा नहीं करनी चाहिए। ब्राह्मण इस लोक में सदैव सौम्य-स्वभाव का ही होता हैं, ऐसा श्रुति का उत्तम वचन है-

इदं चोवाच वचनं रुरप्रतिमौजसम्।
अहिंसा परमो धर्म: सर्वप्राणभृतां वर:।।
तस्मात् प्राणभृत: सर्वान् न हिंस्याद् ब्राह्मण क्वचित्।
ब्राह्मण: सौम्य एवेह भवतीति परा श्रुति:।।[23]

सहस्रपाद ऋषि रुरु को अहिंसात्मक ज्ञान के रहस्य को बतलाते हुए पुन: कहता है-

वेदवेदाङ्गविन्नाम सर्वभूताभयप्रद:।
अहिंसा सत्यवचनं क्षमा चेति विनिश्चितम्।।
ब्राह्मणस्य परो धर्मो वेदानां धारणापि च।
क्षत्रियस्य हि यो धर्म: स हि नेष्येत वै तव।।[24]

अर्थात् वेद-वेदाङ्गों का विद्वान सभी जीवों को अभय देने वाला होता है। अहिंसा, सत्यभाषण, क्षमा और वेदाध्ययन का निश्चय ये ब्राह्मण के उत्तम धर्म हैं। इसलिये हे रुरो ! क्षत्रिय का धर्म तुझ ब्राह्मण के लिए अभीष्ट नहीं है, क्योंकि दण्डधारण, उग्रता और प्रजापालन से सभी क्षत्रिय के कर्म कहे गए हैं। प्राचीनकाल में राजा जनमेजय के यज्ञ में सर्पों की हिंसा होने पर विद्वान् आस्तीक नामक ब्राह्मण के द्वारा सांपों के प्राणों की रक्षा की गई।[25] रुरु कहता है कि जनमेजय के यज्ञ में सर्पों की हिंसा क्यों और कैसे हुई? ऋषि कहता है कि हे रुरो! तुम कथावाचक ब्राहणों के मुख से आस्तीक का महान् चरित्र सुनोगे। ऐसा कहकर सहस्रपाद विलुप्त हो गए।[26] उसके बाद अन्तर्धान हुए मुनि कि खोज करते-करते वह थककर पृथ्वी पर गिर पड़ा। होश आने पर घर लौट कर पिता जी से आस्तीक का उपाख्यान पूछा, जिससे पिता ने उसको पूर्ण वृतान्त सुनाया।[27]

निष्कर्ष- निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि महाभारत के आदिपर्व में वर्णित रुरु-डुण्डुभ संवाद अध्येताओं को एक अहिंसात्मक जीवन जीने के लिये प्रेरित करता है। इसके साथ-साथ इस संवाद से हमें यह भी शिक्षा प्राप्त होती है कि पति को अपनी पत्नी की जीवनरक्षा अन्तिम श्वास तक करनी चाहिए। ऋषि सहस्रपाद जो शापवश डुण्डुभ जाति के सर्पों की योनि में आ गए थे, उन्होंने रुरु को हिंसात्मक कार्य से हटाकर अहिंसा का मार्ग दिखलाया। अत: संक्षेपत: कह सकते हैं कि रुरु-डुण्डुभ संवाद में वर्णित अहिंसा विषयक उपदेश मानवमात्र को सन्मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करता है।

१. महाभारत, आदिपर्व के अन्तर्गत अनुक्रमणिकापर्व, प्रथम अध्याय, मंगलाचरण
२. वही, १.६२.२०
३. वही, १.६२.५३
४. वही, १.६२.४९
५. वही, १.४.१
६. वही, १.५.५-८
७. वही, १.५.९-१०
८. वही, १.७.२९
९. वही, १.८.१-२
१०. वही, १.८.५-११
११. वही, १.८.१३-१४
१२. वही, १.८.१५-१६
१३. वही, १.८.१७-२७
१४. वही, १.९.४-६
१५. वही, १.९.७-१८
१६. वही, १.९.१९
१७. वही, १.९.२१-२३
१८. वही, १.१०.४
१९. वही, १.१०.४
२०. वही, १.१०.६-८
२१. वही, १.११.१-४
२२. वही, १.११.१०-११
२३. वही, १.११.१३-१४
२४. वही, १.११.१५-१६
२५. वही, १.११.१७-१९
२६. वही, १.१२-१३
२७. वही, १.१२.४-६

- सहायक आचार्य (संस्कृत), गोस्वामी गणेश दत्त सनातन धर्म महाविद्यालय,
सैक्टर - 32 सी, चण्डीगढ़।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७३, सं.१-२
अप्रैल-मई,२०२४

महाभारत के 'बलि-इन्द्र' आख्यान में कालतत्त्व

- प्रदीप कुमार

प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष में ऋषि मुनियों के द्वारा वेद का अन्वेषण कर काल की महिमा का मंडन किया है। जिससे कालतत्त्व के अनेक रहस्य उद्घाटित हुए हैं। इसके अवतर भी काल का स्वरूप अत्यंत महद्शाली है। जिसको जानकर मनुष्य अभय, अमर, अजय हो सकता है। वेदों से लेकर के संस्कृत के लौकिक साहित्य में काल का वर्णन अनेक रूपों में हुआ है। महर्षि वेदव्यास कहते है संसार में काल तत्त्व अत्यत बलशाली है, क्योंकि समस्त जगत् काल से प्रेरित किया जाता है। जिस प्रकार बलि और इन्द्र के संवाद में बलि के द्वारा काल के महत्त्व और उसकी प्रबलता के विषय में इन्द्र को बताया था यह आख्यान समस्त ब्रह्माण्ड में कलतत्त्व प्रमुख है यह सारा लोककाल के द्वारा ही संचालित होता है। बलि का कथन है कि कोई बड़ा भारी विद्वान् हो या अल्पविद्या से युक्त, बलवान् हो या दुर्बल, सुन्दर हो या कुरूप, सौभाग्यशाली हो या दुर्भागययुक्त, गम्भीर काल सबको अपने तेज से ग्रहण कर लेता है; अतः उन सबके काल के अधीन हो जाने पर जगत् की क्षणभंगुरता को जानने वाले मुझ बलि की क्या व्यथा हो सकती है?[१] अर्थात् काल की चिंता समस्त प्राणियों को ग्रसित करती रहती है। जो काल के द्वारा पहले से ही मार डाला है, वही किसी दूसरे के द्वारा मारा जाता है। जो पहले से ही नष्ट हो चुकी है, वही वस्तु किसी के द्वारा नष्ट की जाती है तथा जिसका मिलना पहले से ही निश्चित है, उसी को मनुष्य हस्तगत करता है।[२] अर्थात् मरे हुए को वा नष्ट पदार्थ को काल ही कावलित करता है। काल की महिमा अत्यंत बलशालिनी होती है।

प्रायः लोक में कहा भी जाता है कि अमुक व्यक्ति समय से पहले ही आ गया, मर गया या काम कर गया इस प्रकार कि वार्ताएं हुआ करती हैं यह काल का ही बोध कराती है। राजा बलि कहते है कि काल का कभी अंत नहीं होता है। शचीपते, यदि काल मेरे देखते देखते समस्त प्राणियों का विनाश नहीं करता तो मुझे हर्ष होता, अपनी शक्तिपर गर्व होता और उस क्रूर काल पर मुझे क्रोध भी होता।[३] इस एकान्त गृह में गर्दभ का रूप धारण किये मुझे भूसी खाता जानकर तुम यहां आये हो और मेरी निन्दा करते हो।[४] मैं चाहूँ तो अपने बहुत से ऐसे भयानक रूप प्रकट कर सकता हूँ, जिन्हें देखकर तुम्हीं मेरे निकट से भाग खड़े होओगे।[५] हे इन्द्र! काल ही सबको ग्रहण करता है, काल ही सब कुछ देता है तथा काल ने ही सब

कुछ किया है। अतः अपने पुरुषार्थ का गर्व न करो।[६] हे पुरन्दर! पूर्वकाल में मेरे कुपित होने पर सारा जगत् व्यथित हो उठता था। इस लोक की कभी वृद्धि होती है और कभी ह्रास। यह इसका सनातन स्वभाव है। शुक्र! इस बात को मैं अच्छी तरह जानता हूँ।[७] तुम भी जगत् को इसी दृष्टि से देखो। अपने मन में विस्मित न होओ। प्रभुता और काल ही व्यवहार है काल ही सब कार्यों का प्रतिपादन करता है। तुम्हारा चित अभी बालक के समान है। वह जैसा पहले था, वैसा ही आज भी है। हे मघवन! इस बात की ओर दृष्टिपात करो और नैष्टिक बुद्धि प्राप्त करो।[९]

हे वासव! एक दिन देवता, मनुष्य, पितर, गन्धर्व, नाग और राक्षस- ये सभी मेरे अधीन थे। वह सब कुछ तुम जानते हो।[१०] मेरे शत्रु अपने बुद्धिगत द्वेष से मोहित होकर मेरी शरण ग्रहण करते हुए ऐसा कहा करते थे कि विरोचनकुमार बलि जिस दिशा में हों, उस दिशा को भी हमारा नमस्कार है।[११] शचीते ! मुझे अपने इस पतन के लिये तनिक भी शोक नहीं होता है, मेरी बुद्धि का ऐसा निश्चय है कि मैं सदा सबके शासक ईश्वर के वंश में हूँ।[१२] एक उच्चकुल में उत्पन्न हुआ दर्शनीय एवं प्रतापी पुरुष अपने मन्त्रियों के साथ दुःखपूर्वक जीवन बिताता देखा जाता है, उसका वैसा ही भविष्य था।[१३] एक नीच कुल में उत्पन्न हुआ मनुष्य जिसका जन्म दुराचार से हुआ है अपने मन्त्रियों सहित सुखी जीवन बिताता देखा जाता है। उसको भी वैसी ही होनहार समझना चाहिये।[१४] हे शुक्र! एक कल्याणमय आचार-विचार रखने वाली, सुरूपवती युवती विधवा हुई देखी जाती है और दूसरी कुलक्षणा और कुरूपा स्त्री सौभाग्यवती दिखायी देती है।[१५] हे वज्रधारी इन्द्र! आज तो तुम इस तरह समृद्धिशाली हो गये हो और हम लोग जो ऐसी अवस्था मे पहुँच गये हैं, यह न तो हमारा किया हुआ है और न तुमने ही कुछ किया है।[१६] हे शतक्रतो! इस समय में इस परिस्थिति में हूँ और जो कर्म मेरे इस शरीर से हो रहा है, यह सब मेरा किया हुआ नहीं है। समृद्धि और निर्धनता (प्रारब्ध के अनुसार) बारी-बारी से सब पर आती है।[१७] मैं देखता हूँ, इस समय तुम देवराज के पदपर प्रतिष्ठित हो। अपने कान्तिमान् और तेजस्वी स्वरूप से विराजमान हो और मेरे ऊपर बारबार गर्जना करते हो।[१८] परन्तु यदि इस तरह काल मुझ पर आक्रमण करके मेरे सिर पर सवार न होता तो मैं आज व्रज लिये होने पर भी तुम्हें केवल मुक्के से मारकर धरती पर गिरा देता।[१९] उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि मनुष्य जन्म से लेकर मत्यु पर्यन्त काल के वश में रहता है। उसका सारा जीवन सुख- दुःख, मोह, क्रोध आदि काल का ही फल होता है।

आगे राजा बली कहते है कि यह मेरे लिए पराक्रम प्रकट करने का समय नहीं है अपितु शान्त रहने का समय आया है। काल ही सबको विभिन्न अवस्थाओं में स्थापित करके सबका पालन करता

है और काल ही सबको पकाता (क्षीण करता)है।[२०] काल ही तेजस्वी है और उस तेज को शांत करने करने वाला भी काल ही है। संसार में बालक अवस्था तथा वृद्धावस्था वा अन्य सभी अवस्थाएं काल के द्वारा ही परिलक्षित होती है बलि कहता है एक दिन मैं दानवेश्वरो द्वारा पूजित था और मैं भी गर्जता तथा अपना प्रताप सर्वत्र फैलाता था। जब मुझ पर भी काल का आक्रमण हुआ है, तब दूसरे किस पर वह आक्रमण नहीं करेगा।[२१] देवराज! तुम लोग जो बारह महात्मा आदित्य कहलाते हो, तुम सब लोगों के तेज मैंने अकेले धारण कर रखे थे।[२२] हे शासव ! मैं ही सूर्य बनकर अपनी किरणों द्वारा पृथ्वी का जल ऊपर उठाता और मेघ बनाकर वर्षा करता था। मैं ही त्रिलोकी को ताप देता और विद्युत बनकर प्रकाश फैलाता था।[२३] मैं प्रजा की रक्षा करता था और लुटेरों को लूट भी लेता था। मैं सदा दान देता और प्रजा से कर लेता था। मैं ही सम्पूर्ण लोकों का शासक और प्रभु होकर सबको सयंम-नियम में रखता था।[२४] हे अमरेश्वर ! अब मेरी वह प्रभुता समास हो गयी। काल की सेना से मैं आक्रान्त हो गया हूँ; अत: मेरा वह सब ऐश्वर्य अब प्रकाशित नहीं हो रहा हैं।[२५] शचीपति इन्द्र ! न मैं कर्ता हूँ, न तुम कर्ता हो और न कोई दूसरा, वह ही कर्ता है। काल बारी-बारी से अपनी इच्छा के अनुसार सम्पूर्ण लोकों का उपभोग करता है।[२६] अर्थात् काल की प्रभुत्ता विश्व विजयी होती है वह काल अजय तत्व है जिसका सार नहीं पाया जा सकता है। वेदवेता पुरूष कहते हैं कि मास और पक्ष काल के आवास (शरीर) हैं। दिन और रात उसके आवरण वस्त्र हैं। ऋतुएँ द्वार (मन-इन्द्रिय) हैं और वर्ष मुख है। वह काल आयुस्वरूप है।[२७] काल ही मास है काल ही पक्ष है काल ही दिन है काल ही रात है काल ही आयु को पूर्ण करने वाला है अर्थात् काल गति वाला होने के कारण समस्त पदार्थों का जनक है।

कुछ विद्वान् अपनी बुद्धि के बल से कहते हैं कि यह सब कुछ काल संज्ञक ब्रह्म है। इसका इसी रूप में चिन्तन करना चाहिये। इस चिन्तन के मास आदि उपर्युक्त पाँच ही विषय हैं। मैं पूर्वोक्त पाँच भेदों से युक्त काल को जानता हूँ।[२८] राजा बलि कहते हैं कि काल ही ईश्वर हैं जो बाद में अनेक नामो से संसार में स्मरण किया जाता है अत: काल सहस्र नाम वाला है। वह कालरूप ब्रह्म अनन्त जल से भरे हुए महा-सागर के सम्मान गम्भीर एवं गहन है। उसका कहीं आदि-अन्त नहीं है। उसे ही क्षर एवं अक्षररूप बताया गया है।[२९]

महाभारतकार ने क्षर प्रकृति को कहा हैं अर्थात् व्यक्त प्रकृति आकृतिवान होती है जो रूप समास होने के अनन्तर वह अक्षर हो जाती हैं। अत:काल प्रकृति है जो मूल प्रकृति हैं। वह नाश रहित है इसलिए वह अक्षर है। जो लोग तत्वदर्शी है, वे निश्चित रूप से ऐसा मानते हैं कि वह कालरूप परब्रह्म परमात्मा स्वयं निराकार होते हुए भी समस्त प्राणियों के भीतर जीव का प्रवेश कराता है।[२९] काल तत्त्व ईश्वर स्वरूप होने के

कारण इस लोक का जनक भी कहा जाता हैं। जगत् के समस्त प्राणी इस काल रूपी ईश्वर के वश में होते हैं भगवान् काल ही समस्त प्राणियों की अवस्था में उलट-फेर कर देते हैं। कोई भी व्यक्ति उनके इस माहात्म्य को समझ नहीं पाता। काल की इस महिमा से पराजित होकर मनुष्य कुछ भी नहीं कर पाता।[३०] हे देवराज! समस्त प्राणियों की गति जो काल है, उसको प्राप्त हुए बिना तुम कहां जाओगे? मनुष्य भागकर भी उसे छोड़ नहीं सकता, उससे दूर नहीं जा सकता और न खड़ा होकर ही उसके चंगुल से छूट सकता है। श्रवण आदि समस्त इन्द्रियाँ मास-पक्ष आदि पाँच भेदों से युक्त उस काल का अनुभव नहीं कर पाती। कुछ लोग इन काल देवताओं को अग्नि कहते हैं और कुछ प्रजापति।[३१] अर्थात् काल ही साक्षात अग्नि कहा गया है क्योंकि अग्नि समस्त पदार्थों को जलाकर भस्मभूत करती है। उसी प्रकार काल तत्त्व भी सब को नष्ट करता हैं।

दूसरे लोग उस काल को ऋतु, मास, पक्ष, दिन, क्षण, पूर्वाहण, अपराहण और मध्याह्न कहते हैं। उसी को विद्वान् पुरुष मुहूर्त भी कहते हैं। वह एक होकर भी अनेक प्रकार का बताया जाता हैं। हे इन्द्र! तुम उस काल को इस प्रकार जानो यह सारा जगत् उसी के अधीन हैं।[३२] शचीपति इन्द्र! जैसे तुम हो, वैसे ही बल और पराक्रम से सम्पन्न अनेक सहस्त्र इन्द्र समाप्त हो चुके हैं।[३३] शुक्र! तुम अपने को अन्यंत शक्तिशाली और उत्कट बल से युक्त देवराज समझते हो; परंतु समय आने पर महापराक्रमी काल तुम्हें भी शान्त कर देगा।[३४] हे इन्द्र! वह काल ही सम्पूर्ण जगत् को अपने वश में कर लेता है; अतः तुम भी स्थिर रहो। मैं, तुम तथा हमारे पूर्वज भी काल की आज्ञा का उल्लघंन नहीं कर सकते।[३५] अतः काल तत्त्व पर विचार करने से भारतीय संस्कृति के मूल उद्देश्य उद्घाटित होते हैं। जिससे जीवन के मुख्य लक्ष्य के उत्कर्ष तक पहुँचा जा सकता है।

---

१. महाविद्योऽल्पविद्यश्च बलवान् दुर्बलश्च यः।
दर्शनीयो विरूपश्च सुभगो दुर्भगश्च यः।
सर्वं कालः समादते गम्भीरः स्तेन तेजसा।
तस्मिन् कालवशं प्राप्ते का व्यथा में विजानतः।। महाभारत शान्तिपर्व - २२४.१८-१९ (गीताप्रदेश)

२. दग्धमेवानुदहति हतमेतानुहन्यते।
नश्यते नष्टमेवाग्रे लब्धव्यं लभते नरः।। शन्तिपर्व - २२४.२०

३. नास्य द्वीपः कुतः पारो नावारः सम्प्रदृश्यते।
नान्तमस्य प्रपश्यामि विधेरित्यस्य चिन्तयन्।। वही, २२४.२१-२२
यदहं मे पश्यतः कालो भूतानि न विनाशयेत्।
स्यान्मे हर्षश्च दर्पश्च क्रोधश्चैते शचीपते।।

४. तुषभक्षं तु मां ज्ञात्वा प्रविविक्तजने ग्रहे।
विक्षतं गार्दभरूपमागत्य परिगर्हसे।। वही, २२४ . २३

५. इच्छन्नार्यांह विकुर्या हि रूपाणि बहुधाऽऽत्मन:।
विभीषणानि थानीस्थ पलायेपास्त्वमेव मे।।वही, २२४.२४
६. काल: सर्वं समादते काल: सर्वं प्रयच्छति।
कालेन विहितं सर्वं मा कृथा: शक्र पौरुषम्।।वही, २२४.२५
७. पुरा सर्व प्रत्यथितं मयि क्रुद्धे पुरंदर।
अवैमि त्वस्य लोकस्य धर्मं शक्र सनातनम्।।वही, २२४.२६
८. त्वमप्येवमवेक्षस्त माऽऽत्मना विस्मयं गमं:।
प्रभवश्च प्रभावश्च नातमसंस्थ: कदाचन।।वही, २२४.२७
९. कौमारमेव ते चितं तथैवाद्य यथा पुरा।
समवेक्षस्व मधतन् बुद्धि विन्दस्व नैष्ठिकीम्।।वही, २२४.२८
१०. देवा मनुष्या: पितरो गन्धर्वोरगराक्षसा:।
आसन् सर्वे मम वशे तम् सर्वं वेत्थ वासव।।वही, २२४.२९
११. नमस्तस्यै दिशेऽप्यस्तु यस्यां वैरोचनो बलि:।
इति मामभ्यपद्यन्त बुद्धिमात्सर्यमोहिता:।।वही, २२४.३०
१२. नाहं तदनुशोचामि नात्मभ्रंश शचीयते।
एवं मे निश्चिता बुद्धि: शास्तुस्तिष्ठाम्यहं वशे।।वही, २२४.३१
१३. दृश्यते हि कुले जातो दर्शनीय: शक्र दृश्यते।
सुख जीवन् सद्यमात्यो भवितत्यं हि तत् तथा।।वही, २२४.३२
१४. दौष्कुलेयस्तथा मूढो दुर्जात: शक्र दृश्यते।
सुख जीवन् सद्यमात्यो भवितत्यं हि तत् तथा।वही, २२४.३३
१५. कल्याणी रूपसम्पन्ना दुर्भागा शक्र दृश्यते।
अलक्षणा विरूपा च सुभगा दृश्यते परा।।वही, २२४.३४
१६. नेतदस्मत्कृत शुक्र नैतच्छक्र त्वया कृतम्।
यत् त्वमेवगतो वज्रिन् यच्चाप्येवगता वयम्।।वही, २२४.३५
१७. न कर्म भविताप्येतत् कृत मम शतक्रतो।
ऋद्धिर्वाऽप्यथवा नर्द्धि: पर्यायकृतमेव तत्।।वही, २२४.३६
१८. पश्यामि त्वा विराजन्त देवराजमवस्थितम्।
श्रीमन्त शुतिमन्त च गर्जमानं ममोपरि।।वही, २२४.३७
१९. एवं नैव न चेत् कालो मामाक्रम्य स्थितो भवेत्।
पातयेयमहं त्वाद्य सवज्रमपि मुष्टिना।।वही, २२४.३८
२०. न तु विक्रमकालोऽयं शान्तिकालोऽयमागत:।
काल: स्थापयते सर्वं काल: पचति वै तथा।।वही, २२४.३९
२१. मां चेदभ्यागत: कालो दानवेश्वरपूजितम्।
गर्जन्त प्रतपन्तं च कमन्यं नागमिष्यति।।वही, २२४.४०
२२. द्वादशाना तु भतामादित्यानां महात्मनाम्।
तेजास्येकेन सर्वेषा देवराज घृतानि मे।।वही, २२४.४१
२३. अहमेवोद्वहाम्यायो सृजामि च वासव।
तपामि चैव त्रैलोक्यं विद्योताम्यहमेव च।।वही, २२४.४२

२४. सरंक्षामि विलुम्पामि ददाम्यहमथाददे।
सयंच्छामि नियच्छामि लोकेषु प्रभुरीश्वरः।। वही, २२४.४३
२५. तदद्य विनिवृत मे प्रभुत्वममराधिप।
कालसैन्यावगाढस्य सर्व न प्रतिभाति मे।। वही, २२४.४४
२६. नाहं कर्ता न चैव त्वं नान्यः कर्ता शचीयते।
पर्यायेण हि भूयन्ते लोकाः शक्र यदृच्छया।। वही, २२४.४५
२७. मासमासार्धवेश्मानमहोरात्राभिसंवृतम्।
ऋतुद्वारं वर्षमुखमायुर्वेदविदो जनाः।। वही, २२४.४६
२८. आर्तुः सर्वमिदं चिन्त्यं जनाः केचिन्मनीषया।
आस्याः पञ्चैव चिन्तायाः पर्येष्यामि च पञ्चधा।। वही, २२४.४७
२९. गम्भीरं गहनं ब्रह्म महतोयार्णव यथा।
अनादिनिधनं चाहुरक्षंर क्षरमेव च।। वही, २२४.४८
३०. सत्तवेषु लिङ्गमावेश्य निर्लिङ्गमपि तत् स्वयम्।
मन्यन्ते ध्रुवमेवैनं ये जनास्तत्वदर्शिनः।। वही, २२४.४९
३१. भूतानां तु विपर्यास कुरूते भगवानिति।
न होतावाद् भवेद् गम्यं न यस्मात् प्रभवेत् पुनः।। वही, २२४.५०
३२. गति हि सर्वभूतानामगत्वा क्व गमिष्यति।
यो धावता न हातत्यस्तिष्ठन्नपि न हीयते।।
तमिन्द्रियाणि सर्वाणि नानुपश्यन्ति प्रञ्चधा।
आहुश्चैनं केचिदग्निं केचिदाहुः प्रजापतिम्।। वही, २२४.५१
३३. ऋतून मासार्धमासांश्च दिवसांक्ष क्षणांस्तथा।
पूर्वाहमपरांह च मध्याहमपि चापने।।
मुहूर्तमपि चैवाहुरेकं सन्तमनेकधा।
तं कालमिति जानीहि यस्य सर्वमिदं वशे।। वही, २२४.५२
३४. बहूनीन्द्रसहस्त्राणि समतीतानि वासव।
बलतीर्योपपन्जानि यथैव त्वं शचीपते।। वही, २२४.५३
३५. त्वाप्यतिबलं शक्र देवराज बलोत्कटम्।
प्राप्ते काले महावीर्यः कालः सशमयिष्यति।। वही, २२४.५४
३६. या इदं सर्वमादते तस्माच्छक्र स्थिरो भव।
मया त्वया च पूर्वेश्च न स शक्योऽतिवर्तितुम्।। वही, २२४.५५

– असिस्टैट प्रोफेसर, संस्कृत-विभाग, श्रीमती अरुणा आसफ अली स्नात्कोत्तर, राजकीय महाविद्यालय, कालका।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

महाभारत में परशुराम आख्यान

- रविन्द्र कुमार बरमोला

भारतवर्ष में आदिकाल से ही कथा कहानियों के माध्यम से इस देश की गौरव गाथाऐं गाई जाती है। जिनमें से महाभारत विशालकाय ग्रन्थ होने से अनेक गाथाओं का संचय है। यह ग्रन्थ अनेक ग्रन्थों का उपजीवी ग्रन्थ है। महाभारत के ४९वें अध्याय में परमशुराम की वीरता की गाथा का वर्णन वर्णित है।

भृगुवंशी महापराक्रमी परशुराम जी के द्वारा क्षत्रियसंहार के विषय में युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्ण जी से कहते हैं कि आप मेरे संदेह का निवारण कीजिए; क्योंकि कोई भी शास्त्र आपसे बढ़कर नहीं है। तब भगवान् श्रीकृष्ण जी ने कहा- हे कुन्तीनन्दन! मैंने महर्षियों के मुख से परशुराम जी के प्रभाव, पराक्रम तथा जन्म की कथा जिस प्रकार सुनी है, वह सब आपको बताता हूँ, सुनिये। ''जिस प्रकार जमदग्निनन्दन परशुराम जी ने करोड़ों क्षत्रियों का संहार किया था, पुनः जो क्षत्रिय राजवंशों में उत्पन्न हुए, वे अब फिर इस महाभारत के युद्ध में मारे गये हैं।[१] प्राचीन काल मे जहुनु नामक एक राजा थे, उनके पुत्र का नाम अज था, अज से बलाकाश्व नाम पुत्र उत्पन्न हुआ और बलाकाश्व से कुशिक नामक पुत्र हुआ। कुशिक बड़ा धर्मज्ञ था।[२] उन्होंने तीनों लोकों से पराजित न होने वाले पुत्र प्राप्ति के लिए उत्तम तपस्या प्रारम्भ कर दी। कुशिक की तपस्या से प्रसन्न होकर सहस्रनेत्रधारी इन्द्र स्वयं पुत्र के रूप में अवर्तीण हुए। कुशिक का वह पुत्र गाधि नाम से प्रसिद्ध हुआ। गाधी की एक कन्या थी जिसका नाम सत्यवती था। गाधी ने अपनी पुत्री सत्यवती का विवाह भृगुपुत्र ऋचीक के साथ कर दिया। सतयवती बड़े शुद्ध आचार-विचार से रहती थी। उसकी शुद्धता से प्रसन्न होकर ऋचीक मुनि ने उसे तथा अपने श्वसुर राजा गाधी को भी पुत्र देने के लिए चरू तैयार किया।[३] भृगुवंशी ऋचीक ने उस समय अपनी पत्नी सत्यवती को बुलाकर कहा- 'यह चरू तो तुम खा लेना और यह दूसरा अपनी माँ को खिला देना।[४] ऋचीक मुनि ने अपनी पत्नी सत्यवती से कहा तुम्हारी माता का जो पुत्र होगा, वह अत्यन्त तेजस्वी और क्षत्रिय शिरोमणि होगा। वह बड़े-बड़े क्षत्रियों का संहार करने वाला होगा तथा तुम्हारे लिए जो यह चरू तैयार किया है, यह तुम्हें धैर्यवान, शान्त एवं तपस्या परायाण श्रेष्ठ ब्राह्मण पुत्र प्रदान करेगा। ऐसा कहकर ऋचीक मुनि तपस्या करने हेतु जंगल में चले गये। इसी

समय तीर्थयात्रा करते हुए राजा गाधि अपनी पत्नी के साथ ऋचीक मुनि के आश्रम में आये। उसी समय सत्यवती दोनों चरू लेकर शान्त भाव से माता के पास गयी और प्रसन्नता के साथ अपने पति की कही हुई बात को माता से निवेदित किया। सत्यवती की माता ने अज्ञानवश अपना चरू तो पुत्री को दे दिया और उसका चरू लेकर स्वयं ग्रहण कर लिया।[५]

कुछ समय के बाद सत्यवती ने अपने तेजस्वी शरीर से एक ऐसा गर्भधारण किया जो क्षत्रियों का विनाश करने वाला था सत्यवती को देखकर ऋचीक मुनि ने कहा- भद्रे! तुम्हारी माता ने चरू बदलकर तुम्हें ठग लिया है। तुम्हारा पुत्र अत्यन्त क्रोधी और क्रूर कर्म करने वाला होगा एवं तुम्हारा भाई ब्राह्मण स्वरूप तपस्या परायण होगा। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा- राजन! तदनन्तर सत्यवती ने भृगुवंशी जमदग्नि को पुत्र के रूप में उत्पन्न किया तथा गाधि ने विश्वामित्र नामक पुत्र उत्पन्न किया, जो सम्पूर्ण ब्राह्मणोचित गुणों से सम्पन्न थे और ब्रह्मर्षि की पदवी को प्राप्त हुए। जमदग्नि का ही पुत्र अत्यन्त उग्र स्वभाव का क्षत्रियहन्ता परशुराम है।'' परशुराम ने हिमालय के गन्धमादन पर्वत पर भगवान् शिव को प्रसन्न करके अनेक प्रकार के अस्त्र और तेजस्वी कुठार प्राप्त किया। इसी समय राजा कृतवीर्य का बलवान् पुत्र अर्जुन हैहय वंश का राजा हुआ जो एक तेजस्वी क्षत्रिय था। दत्तात्रेय की कृपा से अर्जुन ने एक हजार भुजाएँ प्राप्त की थीं। उसने युद्ध में पृथ्वी को जीतकर ब्राह्मणों को दान कर दिया था। एक समय भूखे-प्यासे हुए अग्निदेव ने पराक्रमी सहस्रबाहु अर्जुन से भिक्षा मांगी और अर्जुन ने अग्नि देव को यह भिक्षा दे दी।[७]

तत्पश्चात् बलशाली अग्निदेव कार्तवीर्य अर्जुन के बाणों के अग्रभाग से गाँवों, गोष्ठों, नगरों और राष्ट्रों को भस्म कर डालने की इच्छा से प्रज्वलित हो उठे। अग्नि ने हवा का सहारा पाकर महात्मा आपव के सूने एवं सुरम्य आश्रम को जलाकर भस्म कर दिया। उसने अर्जुन को शाप देते हुए कहा अर्जुन! तुमने मेरे इस विशाल वन को जला डाला, अतः संग्राम में तुम्हारी भुजाओं को महर्षि परशुराम काट डालेंगे यद्यपि अर्जुन बलवान्, शान्तिप्रिय, ब्राह्मणभक्त और दानी था, किन्तु उस समय उसने शाप पर ध्यान नहीं दिया, शापवश उसके बलवान पुत्र ही पिता के वध का कारण बने।[८]

एक दिन वह क्रूर कर्म करने वाले वे घमण्डी राजकुमार जमदग्निमुनि की कामधेनु के बछड़े को चुरा लाये इस बात का हैहयराज कार्तिवीर्य को पता न था, इसीलिए परशुराम से उसका घोर युद्ध छिड़ गया और क्रोध में भरे परशुराम ने उसकी सहस्र भुजाओं को काट डाला और अपने बछड़े को उसके अन्तःपुर से निकालकर अपने आश्रम में ले आये।[९]

कार्तवीर्य अर्जुन के पुत्र बुद्धिहीन और मूर्ख

सब हैहय कुल में उत्पन्न हुए हैं। जो मेरी रक्षा कर सकते हैं। उनके सिवा पुरूवंशी विदूरथ का भी एक पुत्र जीवित हैं, जिसे ऋक्षवान् पर्वत पर रीछों ने पालकर बड़ा किया है। इसी प्रकार महर्षि पराशर ने दयावश सौदास के पुत्र की जान बचायी है। जो सर्वकर्मा नाम से विख्यात है। वह राजा होकर मेरी रक्षा करे। राजा शिवि ने एक महातेजस्वी पुत्र गोपति को वन में गोओं ने पाल कर बड़ा किया है। हे मुने! आपकी आज्ञा हो तो वही मेरी रक्षा करे। प्रतर्दन के महाबली पुत्र वत्स जिसे गोशाला में बछड़ी ने पाला था, इसीलिए इसका नाम 'वत्स' हुआ है। वह भी राजा होकर मेरी रक्षा कर सकता है दधिवाहन का पौत्र और दिविरथ का पुत्र भी गङ्गा तट पर महर्षि गौतम के द्वारा सुरक्षित है। महातेजस्वी बृहद्रथ महान ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं, उसे गृधकूट पर्वत पर लंगूरो ने बचाया था। राज मरुत के वंश में भी कई क्षत्रिय बालक सुरक्षित हैं, जिनकी रक्षा समुद्र ने की है, उन सबका पराक्रम देवराज इन्द्र के तुल्य है। ''यदि वे क्षत्रिय मेरी रक्षा करें तो मैं अविचल भाव से स्थिर हो सकूंगी। इन बेचारों के पूर्वज मेरे ही लिए युद्ध में अनायास ही परशुराम जी के द्वारा मारे गये हैं।''[१६]

हे महामुने! मुझे उन राजाओं से उऋण होने के लिए उनके इन वंशजों का सत्कार करना चाहिए। मैं धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करने वाले क्षत्रिय के द्वारा कदापि अपनी रक्षा नहीं चाहती। जो अपने धर्म में स्थित हो, उसी के संरक्षण में रहूँ, यह मेरी इच्छा हैं, अतः आप इसकी शीघ्र व्यवस्था करें।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण जी कहते हैं हे ''राजन् (युधिष्ठिर)! पृथ्वी के बताये हुए उन सभी पराक्रमी क्षत्रिय भूपालों को बुलाकर महर्षि कश्यप जी ने उनका भिन्न-भिन्न राज्यो पर अभिषेक कर दिया तथा उन्हीं के पुत्र-पौत्र बढ़े जिनके वंश इस समय प्रतिष्ठित हैं। हे पाण्डुनन्दन! तुमने जिसके विषय में मुझसे पूछा था, वह पुरातन वृतान्त ऐसा ही है।''[१७]

---

१. यथा च जामदग्न्येन कोटिशः क्षत्रिया हताः।
उद्भूता राजवंशेषु ये भूयो भारते हताः।। शान्तिपर्व ४९.२

२. जहनोरजस्तु तनयो बलाकाश्वस्तु तत्सुतः कुशिको नाम धर्मज्ञस्तस्य पुत्रो महीयते। शान्तिपर्व ४९.३

३. तस्याः प्रीतः स शौचेन भार्गवः कुरूनन्दनः।
पुत्रार्थ श्रमयामास चरूं गाधेस्तथैव च।। शान्तिपर्व ४९.७

४. आहूयोवाच तां भार्या सर्चीको भार्गवस्तदा।
उपयोज्यश्चरूरयं त्वया मात्राप्ययं तव।। शान्तिपर्व अ. ४९.८

५. माता तु तस्याः कौन्तेय दुहित्रे स्वं चरूं ददौ।
तस्याश्चरूमधाज्ञानादातमसंस्थं चकार ह।। शान्तिपर्व ४९.१५

६. ऋचिको जनयामास जमदग्निं तपोनिधिम्।

सब हैहय कुल में उत्पन्न हुए हैं। जो मेरी रक्षा कर सकते हैं। उनके सिवा पुरूवंशी विदूरथ का भी एक पुत्र जीवित हैं, जिसे ऋक्षवान् पर्वत पर रीछों ने पालकर बड़ा किया है। इसी प्रकार महर्षि पराशर ने दयावश सौदास के पुत्र की जान बचायी है। जो सर्वकर्मा नाम से विख्यात है। वह राजा होकर मेरी रक्षा करे। राजा शिवि ने एक महातेजस्वी पुत्र गोपति को वन में गोओं ने पाल कर बड़ा किया है। हे मुने! आपकी आज्ञा हो तो वही मेरी रक्षा करे। प्रतर्दन के महाबली पुत्र वत्स जिसे गोशाला में बछड़ी ने पाला था, इसीलिए इसका नाम 'वत्स' हुआ है। वह भी राजा होकर मेरी रक्षा कर सकता है दधिवाहन का पौत्र और दिविरथ का पुत्र भी गङ्गा तट पर महर्षि गौतम के द्वारा सुरक्षित है। महातेजस्वी बृहद्रथ महान ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं, उसे गृधकूट पर्वत पर लंगूरो ने बचाया था। राज मरुत के वंश में भी कई क्षत्रिय बालक सुरक्षित हैं, जिनकी रक्षा समुद्र ने की है, उन सबका पराक्रम देवराज इन्द्र के तुल्य है। ''यदि वे क्षत्रिय मेरी रक्षा करें तो मैं अविचल भाव से स्थिर हो सकूंगी। इन बेचारों के पूर्वज मेरे ही लिए युद्ध में अनायास ही परशुराम जी के द्वारा मारे गये हैं।"[१६]

हे महामुने! मुझे उन राजाओं से उऋण होने के लिए उनके इन वंशजों का सत्कार करना चाहिए। मैं धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करने वाले क्षत्रिय के द्वारा कदापि अपनी रक्षा नहीं चाहती। जो अपने धर्म में स्थित हो, उसी के संरक्षण में रहूँ, यह मेरी इच्छा हैं, अत: आप इसकी शीघ्र व्यवस्था करें।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण जी कहते हैं हे ''राजन् (युधिष्ठिर)! पृथ्वी के बताये हुए उन सभी पराक्रमी क्षत्रिय भूपालों को बुलाकर महर्षि कश्यप जी ने उनका भिन्न-भिन्न राज्यो पर अभिषेक कर दिया तथा उन्हीं के पुत्र-पौत्र बढ़े जिनके वंश इस समय प्रतिष्ठित हैं। हे पाण्डुनन्दन! तुमने जिसके विषय में मुझसे पूछा था, वह पुरातन वृतान्त ऐसा ही है।"[१७]

---

१. यथा च जामदग्न्येन कोटिश: क्षत्रिया हता:।
उद्भूता राजवंशेषु ये भूयो भारते हता:।। शान्तिपर्व ४९.२

२. जहनोरजस्तु तनयो बलाकाश्वस्तु तत्सुत: कुशिको नाम धर्मज्ञस्तस्य पुत्रो महीयते। शान्तिपर्व ४९.३

३. तस्या: प्रीत: स शौचेन भार्गव: कुरूनन्दन:।
पुत्रार्थ श्रमयामास चरूं गाधेस्तथैव च।। शान्तिपर्व ४९.७

४. आहूयोवाच तां भार्या सर्चीको भार्गवस्तदा।
उपयोज्यश्चरूरयं त्वया मात्राप्ययं तव।। शान्तिपर्व अ. ४९.८

५. माता तु तस्या: कौन्तेय दुहित्रे स्वं चरूं ददौ।
तस्याश्चरूमधाज्ञानादातमसंस्थं चकार ह।। शान्तिपर्व ४९.१५

६. ऋचिको जनयामास जमदग्निं तपोनिधिम्।

सोऽपि पुत्रं ह्यजनयज्जमदग्निः सुदारूणम् ।। शान्तिपर्व ४९.३१
सर्व विद्यान्तमं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् ।
रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम ।। शान्तिपर्व ४९.३२

७. तृषितेन च कौन्तेय भिक्षितश्चित्रभानुजा ।
सहस्रबाहुर्विक्रान्तः प्रादाद भिक्षामथाग्रये ।। शान्तिपर्व ४९.३८

८. नाचिन्तयत तदा शापं तेन दत्तं महात्मना ।
तस्य पुत्रास्तु बलिनः शापेनासन् पितुर्बधे ।। शान्तिपर्व ४९.३८

९. ततोऽर्जुनस्य बाहूंस्ताश्छित्वा रामो रूषान्वितः ।
तं भ्रमन्तं ततो वत्सं जामदग्न्यः स्वमा श्रमम् ।। शान्तिपर्व ४९.४८

१०. ततः पितृवधामर्षाद् रामः परममन्युमान् ।
निः क्षत्रियां प्रतिश्रुत्य महीं शस्त्रमगृहणात । शान्तिपर्व ४९.५१

११. त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निः क्षत्रियां प्रभुः । शान्तिपर्व
दक्षिणामश्वमेधान्ते कश्यपायाददत ततः । शान्तिपर्व ४९.६३

१२. ततः शूर्पारकं देश सागरस्तस्य निर्गमे ।।
सहसा जामदग्न्यस्य सोऽपरान्तमहीतलम् । शान्तिपर्व ४९.६८

१३. ततः शूद्राश्च वैश्श्याश्च यथा स्वैरप्रचारिणाः ।।
अवर्तन्त द्विजाग्न्यानां दारेषु भरतर्षभः ।। शान्तिपर्व ४९.६८

१४. तां द्रष्ट्वा द्रवती तत्र सात्रासात् स महामनाः ।
उरूणा धारयामास कश्यपः पृथिवी ततः ।। शान्तिपर्व अ. ४९.७२

१५. धृता तेनोरूणा येन तेनोवीति मदी स्मृता ।
रक्षाणार्थ समुदिश्य यथाचे पृथिवी तदा ।। शान्तिपर्व अ. ४९/७३
प्रसाध कश्यपं देवी वरयामास भूमिपम्

१६. यदि मामभिरक्षन्ति ततः स्थास्यामि निश्चला ।।
एतेषां पितरश्चैव तथैव च पितामहाः ।
मदर्थ निहता युद्धे रामेणाकिलष्ट कर्मणा । शान्तिपर्व अ. ४९/८४ (द्वितीय पाद)-८५

१७. ततः प्रथ्व्यिानिर्दिष्टास्तांन सामानीय कश्यपः ।
अभ्यषिञ्चन्महीपालान् क्षत्रियान् वीर्यसम्मतान् ।। शान्तिपर्व अ. ४९/८७
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च येषां वंशाः प्रतिष्ठिताः ।
एवमेतत् पुरावृंत्त यन्मां पृच्छसि पाण्डवः ।। शान्तिपर्व अ. ४९/८८

– वी. वी. बी. आई. एस एण्ड आई. एस. पंजाब विश्वविद्यालय पटल,
साधु आश्रम, होशियारपुर।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

महाभारतीय आख्यानों में वर्णित शिक्षा एवं संस्कृति

- मृगांक मलासी

भारतीय वैदिक परम्परा ने प्रारम्भ से यही माना है कि वेदवाणी दैवी वाक् है। यह वाक् मनुष्य की उत्पत्ति से पूर्व अन्तरिक्षस्थ तथा द्युलोकस्थ देवों और ऋषियों अर्थात् ईश्वर की भौतिक विभूतियों द्वारा आविर्भूत हो चुकी थी। ओम्, अथ, व्याहृतियों और मन्त्र हिरण्यगर्भ आदि से तन्मात्रारूप वागिन्द्रिय द्वारा उच्चरित किया जा चुके थे। यह वाक् अक्षीण होकर परम व्योम आकाश में स्थिर रही। जीव सृष्टि के आरम्भ में जब ऋषियों ने शरीर धारण किए तो वह दैवी वाक् ईश्वरीय प्रेरणा से उनमें प्रविष्ट हुई। यही कारण है कि वेद का एक नाम श्रुति भी है। तदनन्तर वेदों से प्रारम्भ हुई। यह आर्ष परम्परा उत्तर वैदिक काल से होती हुई पुराण आदि की यात्रा करते हुए रामायण एवं महाभारत काल से होती हुई अधुना अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है। प्राचीन वाङ्मय की बात करें तो रामायण एवं महाभारत को भारतीय परिपाटी में ऐतिहासिक काव्य माना गया है। महाभारत हमारी भारतीय संस्कृति का प्राचीन महाकाव्य है। भारतीय सभ्यता का भव्य रूप इसमें प्रतिपादित किया गया हैं। सामान्य जन को महाभारत में भारतीय संस्कृति का विस्तृत एवं पूर्ण चित्रण दृष्टिगोचर होता है। महाभारत का शान्ति पर्व जीवन की समस्त विसंगतियों को दूर करने का मार्ग प्रशस्त करता है तो वहीं भीष्म पर्व के अन्तर्गत श्रीमद्भगवत्गीता का प्रतिपादन अपने आप में सम्पूण है।

महाभारत में विभिन्न आख्यानों के माध्यम से जीवन में करणीय एवं अकरणीय कृत्यों का विवेचन किया गया है। चक्षिङ् धातु से निष्पन्न आख्यान शब्द का सामान्य अर्थ है 'स्पष्ट बोलना'। सामान्य रूप में एक व्यक्ति द्वारा एक समय में कही जाने वाली कथा ही आख्यान है। काव्यनुशासन में आख्यान के विषय में कहा गया है-

आख्यानसज्ञां तल्लभते
यदाभिनयन् पठन् गायन्।
ग्रन्थिकः एकः कथयति
गोविन्दवद् अवहिते सदसि।।[1]

वाल्मीकीय रामायण में सम्पूर्ण रामकथा को आख्यान संज्ञा से अभिहित किया गया है।[2] बृद्देवताकार[3] ने वर्णन शैली के आधार पर मन्त्रों को स्तुति, निन्दा, प्रशंसा आदि भागों में विभाजित किया है। उनमें पुरूरवा-ऊर्वशी सूक्त[4] को

आख्यान की संज्ञा दी गयी है। मनुस्मृति ने आख्यान का प्रयोग प्राचीन कथा और गाथा का प्रयोग प्राचीन किन्तु कल्पित कथा के लिए हुआ है।[५] पाणिनि अष्टायायी में आख्यान शब्द का प्रयोग उत्तर या प्रतिवचन एवं इत्थं भूतमाख्यानं अर्थात् यथार्थ वृतान्त इन दो अर्थों में प्राप्त होता है।[६] महाभारत में कथा तत्त्व प्रधान ऐतिहासिक घटनाओं को आख्यान और इतिवृत्तात्मक वर्णनों को उपाख्यान की संज्ञा दी गयी है।

ऋग्वेद के संवाद सूक्त महाभारत में वर्णित विभिन्न आख्यानों के उत्स हैं। वर्षाकालीन मेढ़कों की ध्वनि की तुलना वेदपाठी ब्राह्मणों से की गई है।[७] दशम मण्डल में ही सरमापाणि संवाद सूक्त में पणियों को उपदेश देते हुए सरमा करती है कि वे दान करें। पणि सरमा को मित्र और बहन कहकर सम्बोधित करते हैं।[८] महाभारत इस देश की राष्ट्रीय ज्ञानसंहिता है। माभारत में समुद्रमंथन की घटना के पश्चात् हम देखते हैं कि जब मोहिनी रूपधारी विष्णु द्वारा केवल देवताओं को अमृत पिलाया जा रहा था और दानव उनके इस अन्याय को मूक होकर देख रहे थे तब राहु नामक एक दानव से यह देखा नहीं गया उसने माया शक्ति से देवता का रूप बनाया और देवताओं के बीच आकर बैठ गया।[९] विष्णु ने उसे भी अमृत दे दिया। अमृत राहु के कण्ठ तक पहुँचा ही था कि सूर्य और चन्द्रमा की शिकायत पर विष्णु ने अपने चक्र से उस राक्षस का सिर धड़ से अलग कर दिया। क्योंकि अमृत की बूँदे उसके धड़ तक नहीं पहुँची थी इसलिए धड़ तो मृत होकर पृथिवी पर गिर गया परन्तु सिर अमृत के सम्पर्क में आने के कारण अमर हो गया। राहु का मुख सूर्य और चन्द्रमा से उसी दिन से वैर मानने लगे।[१०] यही कारण है कि आज भी सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण की घटना को हम देखते हैं।

वस्तुतः यहाँ एक सन्देश देने का प्रयास किया गया है कि यदि कोई असभ्य व्यक्ति वेष मात्र बदलकर स्वयं को सभ्य घोषित करने का मिथ्या प्रचार करे तो वह तब तक सभ्य नहीं हो सकता जब तक कि वह आत्मिक रूप से परिवर्तित न हो। यहाँ विष्णु का मोहिनी रूप में मात्र देवताओं को अमृत देना यह इंगित करता है कि जीवन में कोई भी अधिकार या सत्ता किसी अधम के पास नहीं आनी चाहिए। आवश्यक है कि इस शक्ति का उचित संरक्षण हो, संवर्धन हो सके इस हेतु किसी योग्य व्यक्ति के हाथों में ही सत्ता या शक्ति हो। इसके लिए छल करना कोई अपराध न होकर एक प्रकार से प्रशंसनीय ही कहा जाएगा। आज के दैनिक जीवन में भी हम देखते हैं कि यदि शासन की डोर किसी दुष्ट व्यक्ति के हाथों में हो तो वह प्रजा को कष्ट ही पहुँचाता है।

महाभारत में इन्द्र-दधीचि आख्यान भी प्राप्त होता है। यह अस्त्र विषयक कथा दो स्थलों में हमें दिखायी देती है। शान्तिपर्व[११] में प्राप्त आख्यान के अनुसार विश्वरूप दानवों द्वारा यज्ञ का सारा

सोमरस पी जाने के पश्चात् इन्द्र चिन्तित हो उठे। वे देवताओं के साथ ब्रह्मा के पास गये और इस चिन्ता से निराकरण का समाधान पूछने लगे। ब्रह्मा ने इन्द्र को कहा कि भृगुवंशी दधीचि ऋषि तपस्या में लीन हैं। तुम उनके पास जाकर लोकहितार्थ शरीर त्यागने का अनुरोध करो और उसके पश्चात् उन्हीं की अस्थियों से वज्र नामक अस्त्र का निर्माण करो। वह अस्त्र असुरों का विनाशक सिद्ध होगा। इन्द्र ने दधीचि के पास जाकर उनसे अभ्यर्थना की। इन्द्र की प्रार्थना पर सुख-दु:ख में समानभाव रखने वाले योगी दधीचि ने आत्मा को परमात्मा में अवस्थित कर शरीर त्याग दिया। उसके बाद इन्द्र ने उनकी अस्थियों का संग्रह किया और उन्हें धाता के पास ले गये। धाता ने उन अस्थियों से वज्र का निर्माण किया। वह वज्र अभेद्य एवं दुर्जय था और उसमें विष्णु प्रविष्ट थे। उससे इन्द्र ने त्वष्टा द्वारा विश्वरूप के शरीर से मन्थन करके उत्पन्न किये वृत्रासुर का वध भी किया। वन पर्व[१२] में इस कथा में पाया जाने वाला अन्तर यह है कि वृत्रासुर के नेतृत्व में असुर पहले इन्द्र पर आक्रमण करते हैं। उनसे त्रस्त होकर इन्द्र, ब्रह्मा की शरण में जाते हैं। पुन: नारायण को आगे करके सरस्वती नदी के तट पर स्थिर आश्रम में दधीचि से याचना की कि वे इस संकट को दूर करने के लिए अपनी अस्थियों का दान करें। त्वष्टा द्वारा अस्थियों से वज्र निर्माण किया गया। वज्र षड्कोणीय एवं भयंकर गड़गड़ाहट वाला था। इन्द्र का असुरों से दो घड़ी तक युद्ध हुआ। इन्द्र जब असुरों के आक्रमण से घबराने लगा तो विष्णु ने उपस्थित होकर इन्द्र का बलवर्धन किया। विष्णु द्वारा सुरक्षित होकर उसने वृत्र का वध किया।

वस्तुत: इन्द्र-दधीचि आख्यान मानवता का वह प्रकल्प है जो सदियों से यही प्रेरणा देता आया है कि सर्वजन हिताय अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देना भी प्रकृति सेवा है। दधीचि द्वारा अपनी अस्थियों का त्याग हमें बताता है कि शरीर के मोह से अच्छा है प्रकृति को उपकृत करना। यह आख्यान हमें बताता है कि आततायियों को समाप्त करने हेतु हमें स्वदेह के प्रति आसक्ति छोड़ देनी चाहिए। जीवन में आवश्यक है कि स्वयं के संकल्प को दधीचि की अस्थियों की तरह कठोर बनायें जिससे वज्र रूपी आवश्यक साधनों की सहायता से अपने मार्ग को प्रशस्त करें।

वस्तुत: महाभारतीय आख्यान नीति, धर्म और सांस्कृतिक मूल्यों की थाती है। महाभारत की सहजता, रोचकता ने परवर्ती विद्वानों, अध्येताओं को इस सीमा तक प्रभावित किया है कि वे महाभारत को अपना प्रमुख उपजीव्य ग्रन्थ मानने लगे। आख्यान हो, पात्र हो, अथवा धार्मिक तत्त्व आदि सभी रूपों में यह प्रमुख उपजीव्य काव्य हो गया। स्वयं महाभारत में इसकी उपजीव्यता का अनेक प्रकार से उल्लेख है।[१३]

मीमांसा शास्त्र के व्याख्याताओं में प्रमुख कुमारिल भट्ट ने महाभारत का उल्लेख करते हुए विभिन्न पर्वों से श्लोक उद्धृत किये हैं। महाभारत में आख्यान एवं उपाख्यान दोनों के अन्तर्गत वर्णन किया गया है। आस्तीक उपाख्यान में प्राप्त होता है कि आस्तीक के पिता प्रजापति के समान प्रभावशाली थे। ब्राह्मचारी होने के साथ ही उन्होंने अक्षर पर भी संयम कर लिया था। वे सदा उग्र तपस्या में संलग्न रहते थे। उनका नाम जरत्कारू था। यायावरों में उनका सबसे ऊँचा स्थान था। एक समय तपोबल से सम्पन्न उन महाभाग ने यात्रा प्रारम्भ की। घूमते-घूमते किसी समय उन्होंने अपने पितामहों को देखा ऊपर की ओर पैर तथा नीचे की ओर सिर किए हुए एक विशाल गढ्डे में लटक रहे थे। तब मुनि ने उन पितामहों से इसका कारण पूछा। पितर बोले हम लोग कठोर व्रत का पालन करने वाले यायावर नामक मुनि हैं। अपनी संतान परम्परा का नाश होने से हम नीचे धरती पर गिरना चाहते हैं। हमारी एक संतति बच गयी है जिसका नाम है जरत्कारू। इस प्रकार अपना परिचय देने के पश्चात् पितामह मुनि से उनका परिचय पूछते हैं तब मुनि जरत्कारू के रूप में अपना परिचय देते हैं। पितामहों द्वारा अपनी संतति जान लेने पर उन्होंने जरत्कारू से विवाह करके कुल की संतान परम्परा का संवर्धन करने को कहा। तब मुनि जरत्कारू ने अपने पितामहों का सम्मान रखते हुए विवाह के लिए स्वीकृति भरी परनतु उन्होंने एक शर्त भी रख दी कि मैं स्वनाम राशि वाली कन्या से ही विवाह करूँगा। ऐसी शर्त रखने के पश्चात् वे सभी ओर विचरण करने लगे। इसी भ्रमण अवधि में एक दिन भ्रमण करते हुए नागराज वासुकी के यहाँ कन्या की भिक्षा माँगी, तभी नागराज ने अपनी बहन जरत्कारू को मुनि के समक्ष प्रस्तुत करके उसे स्वीकार करने के लिए कहा। तब मुनि ने कन्या को पत्नी के रूप में स्वीकार करते हुए पाणिग्रहण किया और वंश की संतान परम्परा को बनाए रखने के लिए आस्तीक नामक पुत्र को जन्म दिया। आस्तीक वेद-वेदांग आदि शास्त्रों के पारंगत विद्वान् थे। आस्तीक ने पाण्वशीय राजा जनमेजय के द्वारा सर्पों के संहार हेतु आरम्भ किये हुये सर्पसत्र नामक महान यज्ञ के दौरान सर्पों को मृत्यु के मुँह से छुड़ाकर पूर्वकाल में ग्रसित कद्रू के शाप से मुक्त कराया तथा संतानोत्पादन द्वारा पितरों का उद्धार किया।[१४]

मानव जीवन तीन ऋणों से युक्त होता है देव ऋण, पितृ ऋण, ऋषि ऋण। प्राचीन काल से ही इन तीन ऋणों का विधान किया गया था वह ऋषि परम्परा आज भी विद्यमान है। सर्पराज वासुकी की बहन जरत्कारू तथा ऋषि जरत्कारू से उत्पन्न पुत्र आस्तीक का भी उद्देश्य कद्रू के शाप से ग्रसित सर्पों को मुक्त करना तथा तपस्या और संतानोत्पादन द्वारा पितरों का उद्धार करना था।

महाभारत में चारों आश्रमों, उनके क्रम,

पुरुषार्थ आदि की महत्त्वपूर्ण चर्चा प्राप्त होती है। शान्तिपर्व में भरद्वाज मुनि के प्रश्न पूछने पर भृगु मुनि ने कहा कि जगत् का कल्याण करने वाले ब्रह्मा ने धर्म की रक्षा के लिए चार आश्रमों का निर्देश किया था। उनमें से गुरुकुल वास को ही पहला आश्रम कहते हैं। उसमें रहने वाले ब्राह्मचारी को बाहर-भीतर की शुद्धि वैदिक संसकार, व्रत नियमों का पालन, प्रात:-सांय:, संध्योपासना आदि कर्म करना चाहिए।[१५] महाभारत काल में चतुराश्रम व्यवस्था का सूत्रपात हो चुका था। अष्टावक्र बन्दी शास्त्रार्थ में कहा गया है कि ब्राह्मणों के लिए आश्रम चार हैं, वर्ण भी चार हैं जो इस यज्ञ का भार वहन करते हैं।[१६] मुख्य दिशाएँ भी चार हैं तथा गो अर्थात् वाणी भी सदा चार ही चरणों से युक्त बताई गई है जिससे द्योतित होता है कि आश्रम के चार विभाग केवल ब्राह्मणों के लिए होते थे। वन पर्व में क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए किसी आश्रम का निषेध नहीं किया गया है किन्तु शूद्रों का धर्म द्विजों की सेवा मात्र बतलाकर इन्हें अन्य कार्यों के लिए निषेध कर दिया गया है। उनके लिए एक मात्र गृहस्थाश्रम की ही व्यवस्था बताई गई-

शूद्रयोन्यां वर्तमानो धर्मज्ञो हि भविष्यसि
मातापित्रो: शुश्रुषां करिष्यसि न संशय:।।
तथा शुश्रुषया सिद्धिं महत्त्वं समवाप्स्यसि
जातिस्मरश्च भविता स्वर्गं चैव गमिष्यसि।।[१७]

यहाँ यह बात कहना भी प्रासंगिक ही होगा कि भारतीय संस्कृति में हम जितना अतीत की ओर लौटते हैं हमारी संस्कृति उतनी ही सुव्यवस्थित और सुदृढ़ दृष्टिगोचर होती है। वर्ण व्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप आज की तरह जन्म से न होकर कर्म पर आश्रित था। कर्म के आधार पर ही जाति व्यवस्था का उन्नयन किया गया था। महाभारत में भी श्रीकृष्ण ने कहा है- **चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश:।** गुण और कर्मों के आधार पर ही चतुर्वर्ण की संरचना की गयी है। वर्तमान समय में जाति व्यवस्था का जो विकृत रूप हमें दिखायी देता है वह प्राचीन समय में नहीं था। आज जाति के नाम पर हर कोई जिसने कभी न वेदों का अध्ययन किया है और न ही रामायण और महाभारत जैसे आर्ष महाकाव्यों को पढ़ा है वह सनातन धर्म पर प्रश्नचिन्ह् उठाने लगते हैं? अत: ऐसे लोगों के लिए आवश्यक है कि वे आर्ष काव्यों का अध्ययन कर यथार्थ को समझने की ओर स्वयं को अग्रसारित करें।

महाभारत के रामोपाख्यान पर्व में युद्धिष्ठिर मार्कण्डेय वार्तालाप में कहा गया है कि महाराज दशरथ के महातेजस्वी पुत्रों ने विधिवत् ब्रह्मचर्य का पालन किया और वेदों तथा रहस्य सहित धनुर्वेद के पारंगत विद्वान् हुये।[१८] महाभारत के आदिपर्व में पाण्डु का अनुताप एवं संन्यास लेने का निश्चय यह दर्शाता है कि महाभारत काल में संन्यास आश्रम का विधान था। पाण्डु का यह कथन कि मैं अपने शरीर और मन को अत्यन्त

कठोर तपस्या में लागऊँगा तथा अकेला स्त्रीरहित, सेवक आदि से पृथक् एकाकी रहकर वृक्ष के नीचे फल की भिक्षा माँगते हुए शिर मुड़ाकर, मौनी संन्यासी होकर वानप्रस्थियों के आश्रमों में विचरण करता रहूँगा। उस समय मेरा शरीर धूल से भरा होगा और निर्जल एकान्त स्थान में मेरा निवास होगा–

अतीव तपसाऽऽत्मानं योजयिष्याभ्यसंशयम्।
तस्मादेकोऽहमेकाकी एकैकस्मिन् वनस्पतौ।।
चरन् भैक्ष्यं मुनिर्मुण्डश्वरिष्याम्याश्रमनिथ्मान्।
पांसुना समवच्छन्नः शून्यागार कृतालयः।।[११]

महाभारत में वर्णित आख्यानों में नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि समस्त तत्त्वों का निदर्शन होता है। आख्यान परम्परा के माध्यम से हम भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में क्या करणीय है और क्या अकरणीय है इसे समझ सकते हैं। महाभारत में वर्णित आख्यान समस्त प्राणियों को सांसारिक प्रगति के साथ आध्यात्मिक उन्नति की ओर भी अग्रसर करते हैं। विभिन्न आख्यानों सरमा-पणि, रामोपाख्यान, नलोपाख्यान, शकुन्तलोपाख्यान आदि भारतीय संस्कृति की वे धरोहर हैं जिनमें समस्त भारतीयता और हमारी ऋषि परम्परा समाहित है।'रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न रावणादिवत्' का उपदेश देने वाला यह महाकाव्य युद्ध और शान्ति दोनों की उपादेयता को इंगित करता है। ये आख्यान हमें राष्ट्र सेवा का महाकाव्य बताते हैं और इस उक्ति की गरिमा से भी अवगत कराते हैं कि **कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्**। आधुनिक समय में कतिपय मनोविदलता से पीड़ित व्यक्तियों को इसमें कमियाँ दिखाई देती हैं परनतु यह एक प्रकार की ऐसी व्याधि है जिसका समाधान भी महाभारत के अध्ययन से ही होगा। प्रस्तुत पत्र में कतिपय आख्यानों के संदर्भ में ही इस तथ्य को रखने का प्रयास किया गया है कि महाभारत में उल्लिखित आख्यान, उपाख्यान भारतीय संस्कृति के मेरुदण्ड हैं। ये व्यक्ति को अज्ञानता, मोह, ईर्ष्या, आदि विकृतियों से दूर करते हुए आत्मिक उन्नति के मार्ग प्रशस्त करते हैं।

कहना ही होगा कि भारतीय संस्कृति को प्रशस्त करने वाली शिक्षा हमें विभिन्न उपाख्यानों में दिखायी देती है। अतः महाभारत के जय संहिता से लेकर महाभारत की यात्रा में विभिन्न तात्विक तथ्यों के दर्शन किए जा सकते हैं। यह आर्ष महाकाव्य हमारी धरोहर है। आवश्यकता है कि हम अपनी इस धरोहर से उचित सीख लेकर अपने पूर्वजों और ऋषि परम्परा को और भी अधिक समृद्ध करने में सहायक हों। हमारे कुनबे के आदर्श महर्षि दयानन्द के वाक्य वेदों की ओर लौटने को आत्मसात करने का अवसर आ गया है जिसके लिए महाभारत एवं रामायण ये दो आर्ष काव्य हमारे लिए अमूल्य पाथेय हैं।

---

१. काव्यानुशासन

२. क. आश्चर्यमिदमाख्यानां मुनिना संप्रकीर्तितम्। बालकाण्ड ४/२३
ख. एवमेतत् पुरावृत्तम् आख्यानम् भद्रमस्तु वः। युद्धकाण्ड १३१/१२२
३. आख्यानं तु हये जाये। बृहद्देवता, १/५३ ४. ऋग्वेद १०/९५
५. मनुस्मृति २/११४-११५, पृ. १२१
६. लक्षणेत्थम्भूताख्यान भागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः। अष्टाध्यायी, १/४/९०
७. संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्रमण्डूका अवादिषुः।। ऋग्वेद, १०/१०३/१
८. क्रीडडिंडन्द्रः सरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात्।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवति। ऋग्वेद भाष्य, १०/१०८/१
९. तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा।
आख्यातं चन्द्रसूर्याभ्यां सुराणां हितकाम्यया।।
ततो भगवता तस्य शिरश्छिन्नमलंकृतम्।
चक्रायुधेन चक्रेण पिबतोऽमृतमोजसा।। महाभारत आदिपर्व, १९/५-६
१०. ततो वैरविनिर्बन्धः कृतो राहुमुखेन वै।
शाश्वतश्चन्द्रसूर्याभ्यां ग्रसत्यद्यापि चैव तौ। महाभारत आदिपर्व, १९/९
११. महाभारत, शान्तिपर्व ३४२/३५-४१
१२. तमुपायं प्रवक्ष्यामि यथा वृत्रं वाधिष्यथ।
दधीचि इति विख्यातो महानृषिरूदारधी ।। महाभारत, वनपर्व, १००/७
१३. क. सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यों भविष्यति।
पर्जन्य इस भूतानामक्षयों भारतद्रुमाः।। महाभारत आदिपर्व १/९२
ख. इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः।
पञ्चभ्य इव भूतेभ्यो लोकसंविधयस्त्रयः।। आदिपर्व, २/३८५
ग. इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते।
उदयप्रेमप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः।। आदिपर्व, २/३८९
१४. आदिपर्व अध्याय १३-५८
१५. पूर्वमेव भगवता ब्रह्मणा लोकहितमनुतिष्ठता धर्मसंरक्षणार्थमाश्रामाश्चत्वारोऽमिनिर्दिष्टाः। तत्र गुरुकूलवासमेव प्रथममाश्रममुदाहरन्ति सम्यग् यत्र शौचसंस्कार नियमब्रतविनियतात्मा उभे संध्ये भास्कराग्निदैवतान्युपस्थाय बिहाय तन्द्रयालस्ये गुरोरभिवादनवेदाभ्यासश्रवणपवित्रीकृतान्तरात्मा त्रिषवणमुपस्पृश्य ब्रह्मचर्याग्नि परिचरण गुरूशुश्रुषनिषानित्यभिक्षाभैक्ष्यादिसर्वनिवेदितान्तरात्मा गुरुवचननिर्देशानुष्ठाना प्रतिकूलो गुरूप्रसादलब्ध-स्वाध्यायतत्परः स्यात्।। महाभारत, शान्तिपर्व १२/१९१/८
१६. चतुष्ट्यं ब्रह्माणानां निकेतं चत्वारो वर्णा यज्ञामिमं वहन्ति।
दिशश्चतस्रो वर्णचतुष्ट्यं च चतुष्पदा गौरपि शश्वदुक्ता।। महाभारत, वनपर्व ३/१३४/११
१७. महाभारत, वनपर्व, ३/२१६/४-५
१८. क्रमेण चास्य ते पुत्रा व्यवर्धन्त महौजसः।
वेदेषु सरहस्येषु धनुर्वेदेषु पारगाः।।
चरितब्रह्माचर्यास्ते कृतदाराश्च पार्थिव।
यदा तदा दशरथः प्रीतिमानभवत् सुखी।। महाभारत, वनपर्व, ३/२७७/४-५
१९. महाभारत आदिपर्व, १/११८/७-८

– असिस्टेंट प्रोफेसर, डॉ. शिवानन्द नौटियाल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कर्णप्रयाग (चमोली), उत्तराखण्ड।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७३, सं.१-२
अप्रैल-मई ,२०२४

धर्मराज युधिष्ठिर और द्रौपदी का संवाद

- शैलजा अरोड़ा

वैशम्पायन जी कहते हैं- जनमेजय! एक दिन संध्या के समय वनवासी पाण्डव कुछ शोकग्रस्त होकर द्रौपदी के साथ बैठकर बातचीत कर रहे थे। बातचीत के दौरान द्रौपदी कहने लगी सचमुच दुर्योधन बड़ा क्रूर और दुरात्मा है। हम लोगों को दु:खी देखकर उसे तनिक भी तो दु:ख नहीं होता। हरे, हरे! उसने हम लोगों को मृगछाला ओढ़ा कर घोर जंगल में भेज दिया, परन्तु उसे रत्तीभर भी पश्चाताप नहीं हुआ। अवश्य ही उसका हृदय फौलाद से अथवा पाषाण से निर्मित होगा। एक तो उसने छल-कपट से द्यूत में जीत हासिल कर ली, दूसरे आप जैसे सरल और धर्मात्मा पुरुष को भरी सभा में कठोर वचन कहे और अब अपने मित्रों के साथ मौज उड़ा रहा है। जब मैं देखती हूँ कि आप लोग सुनहरी पलंग छोड़कर कुसा-घास के बिछौनों पर सो रहे हैं, मुझे हाथी-दाँत का सिंहासन याद आ जाता है और मैं रो पड़ती हूँ। बड़े-बड़े राजा आप लोगों को घेरे रहते थे, आप लोगों का शरीर चन्दनचर्चित होता था। आज आप अकेले मैले-कुचैले जंगलों में भटक रहे हैं। मुझे भला कैसे शान्ति मिल सकती है?

उसने आगे कहा- प्रियवर! आपके महलों में प्रतिदिन हजारों ब्राह्मणों को इच्छानुसार भोजन कराया जाता था और आज हम लोग फल-मूल खाकर जीवन निर्वाह कर हरे हैं। मेरे प्यारे स्वामी भीमसेन को वनवासी और दु:खी देखकर आपके चित्त में क्रोध क्यों नहीं उमड़ता ? भीमसेन अकेले ही रणभूमि में सब कौरवों को मार डालने की सामर्थ्य रखते हैं परन्तु आप रुख न देखकर मन मसोसकर रह जाते हैं। अर्जुन दो बाँहों के होने पर भी हजार बाँह वाले कार्तवीर्य से भी अधिक बलशाली हैं। इन्हीं के अस्त्र-कौशल से चकित होकर बड़े-बड़े राजा आपके चरणों में प्रणाम और आपके यज्ञ में आकर ब्राहम्णों की सेवा करते थे। वही देवता और दानवों के पूजनीय पुरुषसिंह अर्जुन आज बनवासी हो रहे हैं? आपके चित्त में क्रोध का उदय क्यों नहीं होता? साँवला रंग, विशाल शरीर, हाथों में ढाल-तलवार और वीरता में अप्रतिम ऐसे नकुल और सहदेव को वनवासी देखकर आप क्यों चुप हो रहे हैं? राजा द्रुपद की पुत्री, महात्मा पाण्डु की पुत्रवधु, धृष्टद्युम्न की बहन और पाण्डवों की पतिव्रता पत्नी मैं आज वन-वन भटक रही हूँ। आपकी सहन शक्ति को धन्य है। ठीक है, आप में क्रोध नहीं है। जिसमें क्रोध और तेज न हो, वह कैसा क्षत्रिय! जो समय आने पर अपना तेज नहीं प्रकट कर सकता, सभी प्राणी उसका तिरस्कार करते हैं। शत्रुओं से क्षमा का नहीं, प्रताप के अनुरूप व्यवहार करना चाहिए।

द्रौपदी ने फिर कहा- राजन् पहले जमाने में

राजा बलि ने अपने पितामह प्रहलाद से पूछा था– पितामाह! क्षमा उत्तम है या क्रोध ? आप कृपा करके मुझे ठीक–ठीक समझाइये। प्रह्लाद जी ने कहा– क्षमा और क्रोध दोनों की एक व्यवस्था है। न सदैव क्रोध उचित है और न क्षमा। अत: देश, काल, सामर्थ्य और कमजोरी पर पूरा–पूरा विचार करके मृदुलता और उग्रता का व्यवहार करना चाहिए। कभी–कभी तो भय से भी क्षमा करनी पड़ती है। कुटिल व्यक्ति को क्षमा नहीं करना चाहिए। यदि अनजाने में एक बार अपराध हो जाय तो क्षमा कर देना चाहिए। परन्तु दूसरी बार अपराध करने पर दण्ड अवश्य देना चाहिए। द्रौपदी ने कहा– राजन्! धृतराष्ट्र के पुत्र अपराध–पर–अपराध करते जा रहे हैं। उनका लालच असीम है। मैं समझती हूँ कि उन पर अब क्रोध करने का समय आ गया है, आप उन्हें क्षमा न करके उन पर क्रोध कीजिए। युधिष्ठिर ने कहा– प्रिये! मनुष्य को क्रोध के वश में न होकर क्रोध को अपने वश में करना चाहिए। जिसने क्रोध पर विजय प्राप्त कर ली, वह कल्याण भाजन हो गया। क्रोध के कारण मनुष्यों का नाश होता प्रत्यक्ष दिखता है। मैं अवनति के हेतु क्रोध के वश में कैसे हो सकता हूँ? बुद्धिमान पुरुषों ने अपनी लौकिक उन्नति, पारलौकिक सुख और मुक्ति प्राप्त करने के लिए क्रोध पर विजय प्राप्त की है जबकि क्रोधी मनुष्य पाप करता जाता है, गुरुजनों को मार डालता है, श्रेष्ठ पुरुष और कल्याणकारक वस्तुओं का भी कठोर वाणी से तिरस्कार करता हुआ विपत्ति में पड़ जाता है। क्रोध के दोष गिने नहीं जा सकते। उसी से, यही सोचने–विचारने से मेरे चित्त में क्रोध नहीं आता। जो मनुष्य क्रोध करने वाले पर भी क्रोध नहीं करता, क्षमा करता है, वह अपनी और क्रोध करने वाले की महासंकट से रक्षा करता है। वह दोनों का रोग दूर करने वाला चिकित्सक है। झूठ बोलने की अपेक्षा सच बोलना कल्याणकारी है। क्रूरता की अपेक्षा कोमलपना उत्तम और हितकारी है। क्रोध की अपेक्षा क्षमा ऊँची है। यदि दुर्योधन मुझे मार भी डाले तो भी मैं अनेकों दोषों से भरे और महात्माओं से परिव्यक्त क्रोध को कैसे अपना सकता हूँ। मैंने यह निश्चय कर लिया है कि तत्वदर्शी पुरुष में, जिसे तेजस्वी कहते हैं, क्रोध होता ही नहीं। जो अपने क्रोध को ज्ञान दृष्टि से शान्त कर देते हैं, उन्हें ही तेजस्वी समझना चाहिए। क्रोध में जब मनुष्य अपने कर्तव्य ही भूल जाता है, तब उसे कर्त्तव्य अथवा मर्यादा का ध्यान रह ही कैसे सकता है? क्रोधी पुरुष अवध्य प्राणियों को मार डालता है, गुरुजनों को मर्मभेदी वचन कहता है; इसलिए यदि अपने में तेज हो तो पहले क्रोध को ही अपने वश में करना चाहिए। काम करने की चतुराई, शत्रु पर विजय प्राप्त करने के उपाय का विचार, विजय प्राप्त करने की शक्ति और स्फूर्ति तेजस्वियों के गुण हैं। ये गुण क्रोधी मनुष्य में नहीं रह सकते। क्रोध के त्याग से ही इनकी प्राप्ति होती है। क्रोध रजो गुण का परिणाम होने के कारण मनुष्यों की मृत्यु है। इसलिए क्रोध छोड़कर शान्त हो जाना चाहिए। एक बार अपने धर्म से हट जाना भी अच्छा, परन्तु क्रोध करना अच्छा नहीं। मैं मूर्खों की बात नहीं कहता समझदार मनुष्य भला, क्षमा का त्याग कैसे कर सकता है। मनुष्यों में यदि

क्षमाशीलता न हो तो सब लोग आपस में लड़-झगड़कर मर मिटे। एक दु:खी दूसरे को दु:ख दे, दण्ड देने वाले गुरुजनों पर भी प्रहार करने को उद्यत हो जाये, तब तो धर्म कहीं रहे ही नहीं, प्राणियों का नाश हो जाय। ऐसी अवस्था में क्या होगा?

गाली के बदले गाली, मार के बदले में मार, तिरस्कार के बदले में तिरस्कार और पिता पुत्र को, पुत्र पिता को, पति पत्नी को और पत्नी पति को नष्ट कर डाले। कोई मर्यादा, कोई व्यवस्था, कोई सौहार्द न रहे। जो गाली देने पर भी, मारने पर भी क्षमा करता है, क्रोध को वश में करता है, वह उत्तम विद्वान् है। क्रोधी मूर्ख है, नरक का भागी है। इस सम्बन्ध में महात्मा कश्पय ने क्षमाशील पुरुषों के बीच में क्षमा की साधना का गीत गाया है- क्षमा धर्म है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा वेद है, क्षमा स्वाध्याय है। जो मनुष्य क्षमा के सर्वोत्कृष्ट स्वरूप को जानता है, वह सब कुछ क्षमा कर सकता है। क्षमा ब्रह्म है, क्षमा सत्य है, क्षमा ही भूत और भविष्यत है, क्षमा तप है, क्षमा पवित्रता है, क्षमा ने ही इस जगत् को धारण कर रखा है। याज्ञिकों को जो लोक मिलते हैं, उनसे भी ऊपर के लोक क्षमावानों को मिलते हैं। वेदज्ञों को तपस्वियों को और कर्मनिष्ठों को दूसरे-दूसरे लोक मिलते हैं, परन्तु क्षमावानों को ब्रह्मलोक मिलता है।

क्षमा तेजस्वियों का तेज है, तपस्वियों का ब्रह्म है और सत्यवानों का सत्य है। क्षमा ही लोकोपकार, क्षमा ही शान्ति है। क्षमा में ही सारे लोक, लोकोपकारक यज्ञ, सत्य और ब्रह्म प्रतिष्ठित है। ऐसी क्षमा को भला, मैं कैसे छोड़ सकता हूँ। ज्ञानी पुरूष को सर्वदा क्षमा ही करना चाहिए। जब सब कुछ क्षमा कर देता है, तब वह स्वयं ब्रह्म हो जानता है। क्षमावानों को यह लोक और परलोक दोनों तैयार हैं। यहाँ सम्मान तथा परलोक में शुभ गति मिलती है। जिन्होंने क्षमा के द्वारा क्रोध को दबा दिया है, उन्हें परम गति प्राप्त हो गई है। प्रिये! महात्मा कश्यप ने क्षमा की महिमा इस प्रकार गायी है; इसे सुनकर तुम क्रोध छोड़ो और क्षमा का अवलम्बन करो। भगवान् श्रीकृष्ण, भीष्म पितामह, आचार्य धौम्य, मन्त्री विदुर, कृपाचार्य, संजय और महात्मा वेदव्यास भी क्षमा की ही प्रशंसा करते हैं। क्षमा और दया ही ज्ञानियों का सदाचार है; वही सनातन धर्म है। मैं सच्चाई के साथ क्षमा और दया का पालन करूँगा। क्षमा मनुष्य का सर्वोच्च धर्म है- 'धर्म रक्षति रक्षित:' अर्थात् जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है।

द्रौपदी ने कहा- मैं धर्म और ईश्वर की अवमानना और तिरस्कार कभी नहीं करती। मैं इस समय विपति की मारी हूँ, इसलिए ऐसा प्रलाप कर रही हूँ। जानकार मनुष्य को कर्म अवश्य ही करना चाहिए; क्योंकि बिना कर्म किए केवल जड़ पदार्थ ही जी सकते हैं, चेतन प्राणी नहीं। वैसे ही धीर पुरुष को अपनी बुद्धि के अनुसार देश, काल, शक्ति और उपायों का ठीक-ठीक विचार करके अपना काम करना चाहिए। आप विचार करके अपने कर्त्तव्य का निश्चय करें।

**- 4/114, एस. एफ. एस. अग्रवाल फार्म, मानसरोवर,
जयपुर - 302020 (राजस्थान)**

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७३, सं.१-२
अप्रैल-मई, २०२४

गुरु दुर्वासा ऋषि द्वारा शिष्य रूपी भगवान श्रीकृष्ण की परीक्षा

- विद्यानन्द 'ब्रहमचारी'

सूर्य की शोभा धूप से, चन्द्रमा की चाँदनी से वृक्षों की शोभा फल-फूलों से, राजा की शोभा न्याय तथा धर्म प्रिय कर्मचारियों से पिता की शोभा सुपुत्र से माता की शोभा भक्त, सूर एवं दानी पुत्र से होती है। वैसे ही गुरु की शोभा सद्शिष्य से ही होती है। जल के प्रवाहित होने से नदी (दरिया) कहलाती है। जिसमें जल न हो उसे कोई भी नदी नहीं कहता। ऐसा ही किसी के शिष्य होने पर ही गुरु कहलाता है। गुरु सूर्य स्वरूप है तो शिष्य उनकी धूप है। गुरु चन्दन के सदृश हैं तो शिष्य कीर्ति रूपी सुगन्ध को फैलाने वाला वायु के समान है जो कि सत्य ज्ञान की सुगन्ध से दूसरों को भी ज्ञानी बना देता है।

द्वापर युग में आठवीं वार कृष्णवतार हुआ। यह द्वापर के अन्त और कलियुग के आरम्भ में हुआ था। अजद्गुरू श्रीकृष्णचन्द्र की छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी सभी लीलाएँ उत्तम आदर्श रूप से लोकमात्र के हित के लिए हुई हैं। नटवर श्रीगोपालकृष्ण की महाभारत से सम्बन्ध रखने वाली लीलाएँ मनुष्य को हर अवस्था में परम शिक्षा देने वाली है।

लीलाधारी भगवान श्रीकृष्ण की कीर्तिरूपी पताका को सहारा देकर ऊँचे उठाने वाले गुरु दुर्वासा ऋषि की सेवा और गुरु प्रेम का सबसे बड़ा उदाहरण देकर अमर हैं। भक्त ही भगवान् को प्रकट करता है। शिष्य में गुरु के प्रति जितना अधिक प्रेम, श्रद्धा और विश्वास होता है उतनी ही उसके ऊपर गुरू की कृपा होती है। गुरु की कृपा प्राप्त करने में क्रिया रूप सेवा से भाव की अधिक आवश्यकता होती है। भाव के बिना की हुई सेवा का उत्तम फल नहीं मिलता।

इस जगत् में जिसको गुरु सेवा का सौभाग्य प्रापत होता है वही जीव धन्य है और उसका ही मनुष्य शरीर पाना सार्थक है।

इसी प्रसंग के आलोक में देवताओं के कहने से एक बार गुरु दुर्वासा ऋषि अपने प्रिय शिष्य श्रीकृष्ण की परीक्षा लेने के उद्देश्य से द्वारिका में आकर नगर के बाहर रमणीक किसी वाटिका में ठहरे। जब भगवान श्रीकृष्ण जी को उनके आने की सूचना मिली तो वह नंगे पाँव गुरु-शुश्रूषा के लिये उपस्थित हुए। प्रणाम आदि के अनन्तर प्रार्थना की कि महाराज! भोजन यहां पर ही बनना

चाहिए या आप सेवक के स्थान को पवित्र करेंगे। ऋषि ने उत्तर दिया कि भाई हमारे साथ दस सहस्र शिष्य हैं, तुम भोजन बनाने का कष्ट न उठाओ। यह सुनकर भगवान श्रीकृष्ण ने अत्यन्त सविनय होकर उत्तर दिया कि महाराज! दस सहस्र हैं तो क्या, यदि दस लाख भी हों तो भी कोई कष्ट नहीं; क्योंकि कर्त्ता-धर्त्ता तो सब कुछ आप ही हैं। यहाँ भी और वहाँ भी केवल आप की आज्ञा की आवश्यकता है। सब कुछ ठीक हो जायेगा।

भगवान श्रीकृष्ण के इस प्रकार प्रार्थना करने पर ऋषि ने उनका निमन्त्रण स्वीकार किया। जब भगवान श्रीकृष्ण वहाँ से विदा हुए तो उनके शिष्यों में से एक ने कहा कि महाराज! श्रीकृष्ण जी को जैसा सुनते थे वैसा ही पाया। यद्यपि यह अपने समय के बहुत बड़े आदमी हैं परन्तु मान का लेशमात्र भी नहीं। दुर्वासा ऋषि ने कहा कि सच पूछो तो हम यहाँ इसी बात की परीक्षा करने आये हैं कि जिस प्रकार श्रीकृष्ण बल, शौर्य, एश्वर्य, विद्या, ज्ञान आदि सभी बातों में अग्रगामी हैं वैसे गुरु सेवा और श्रद्धा प्रेम में भी हैं या नहीं। तुम देखोगे कि हम उनकी परीक्षा किसी प्रकार करते हैं।

भोजन तैयार होने पर भगवान श्रीकृष्ण स्वयं गुरु जी को लेने आये। नाना प्रकार के सुस्वादु, षड्रस व्यञ्जन अपने सामने तैयार कराये थे। परन्तु ऋषि ने देखते ही नाक भौं चढ़ाकर कहा कि यह खाना हमारे काम का नहीं। तुमने हमसे पहले क्यों नहीं पूछ लिया कि हम किस प्रकार का खाना खाते हैं। हम चाहते हैं कि इस सब खाने को समुद्र में बहा दो और फिर दुबारा अमुक-अमुक प्रकार का भोजन तैयार करो। वहाँ क्या था, केवल आज्ञा की देर थी। भोजन जैसा कि ऋषि ने बतलाया था फिर तैयार हो गया; परन्तु वह भी इच्छा के प्रतिकूल ही हुआ। इसी प्रकार कई बार भोजन तैयार होने पर अन्त में कठिनता से ऋषि ने भोजन स्वीकार किया।

पाठकगण? आप सोचें कि दस हजार व्यक्तियों के लिए भोजन बनाना और एक बार नहीं कई बार धैर्य ही तो कहाँ तक रहे; परन्तु वाह रे कृष्ण! प्रेम और धैर्य की मूर्ति, आप सब प्रेमियों के सरदार सिद्ध हुए। माथे में जरा बल नहीं पड़ा और न चित्त ही मैला हुआ; बल्कि ज्यों-ज्यों ऋषि भोजन को अस्वीकार करते गये उनका प्रेम अमृत बढ़ता गया।

जब ऋषि भोजन से निवृत हुए और जंगल की ओर जाने लगे तो भगवान श्रीकृष्ण ने अपना विशेष रथ लाने के लिए के लिए आज्ञा दी। उस समय दुर्वासा ऋषि कहने लगे कि कृष्ण ! तुमने भोजन से तो प्रसन्न किया, अब जी चाहता है कि आज ऐसे रथ की सवारी करें जिसमें एक ओर तुम और दूसरी ओर रुक्मिणी घोड़ों के स्थान पर जुती हुई हो।

यदि श्रीकृष्ण जी के स्थान पर कोई ओर होता तो न केवल ऋषि से रुष्ट ही हो जाता बल्कि

यदि चाहता तो जो चाहता दण्ड देता, क्योंकि वह राजा थे। परन्तु श्रीकृष्ण के प्रेम और श्रद्धा में तनिक भी बल न पड़ा। ऋषि को बैठा कर आप सीधे रूक्मिणी के महल में दौड़े आये और रुक्मिणी को बुलाया (जो कि पटरानी और अत्यन्त सुन्दरी कोमलाङ्गी पतिव्रता स्त्री थी)।

रुक्मिणी – महाराज! क्या आज्ञा है?

श्रीकृष्ण– आज तुम से ऐसा ही काम आ पड़ा है, जिसके लिए आवश्यक प्रतीत होता है कि प्रथम इसके कि वह कार्य तुम को बतलाया जाय, पहले तुम प्रतिज्ञा करो कि तुम उसे पूरा करोगी।

रुक्मिणी– स्वामिन् ! स्त्री के लिये इससे बढ़कर क्या हो सकता है कि अपने पति के काम आवे। चाहे वह काम जान देकर ही सिद्ध क्यों न हो।

श्रीकृष्ण– महारानी! यद्यपि जान देना एक बहुत कठिन कार्य है तथापि यह कार्य, जो आज तुम से लेना चाहता हूँ, इससे भी कठिन है।

रुक्मिणी– प्रिय स्वामिन्! आप प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा कीजिये दासी सर्वथा काम आने को तैयार है। इस बात को आप स्वयं जान सकते हैं कि मैं इस कार्य के योग्य हूँ या नहीं।

श्रीकृष्ण– पतिव्रता स्त्री को किसी कार्य के आयोग्य समझना ठीक नहीं। तुम से वह काम हो सकता है, थोड़ा सा कष्ट अवश्य उठाना पड़ेगा।

रुक्मिणी– मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि जो आज्ञा आप की होगी उसको अपने सिर आँखों से स्वीकार करूँगी।

श्रीकृष्ण– प्रिये! तुम को मालूम है कि कल से हमारे गुरु महाराज द्वारिका में विराजमान हैं और आज तुम्हारे घर परम कृपा करके भोजन करने पधारे हैं। अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि वे भोजन से अति प्रसन्न हुए। जब भोजन से निवृत होकर अपने ठिकाने पर जाने लगे तो मैंने अपना रथ मँगवाया कि सवार होकर चले जावें। परन्तु रथ को देखकर वह कहने लगे कि कृष्ण! तुमने आज भोजन से हमको प्रसन्न किया है, एक बात से और प्रसन्न करो तो हम तुम से बड़े प्रसन्न होंगे। मेरे पूछने पर उन्होंने कहा कि आज हम चाहते हैं कि ऐसे रथ की सवारी करें तो किसी के भाग्य में न हुई हो। इसमें घोड़े के स्थान पर एक और तुम और दूसरी ओर रुक्मिणी जुते। केवल इसलिये मैं तुम्हारे समीप आया हूँ कि तुम चलकर ऋषि की इच्छा पूर्ण करो।

रुक्मिणी ने बहुत आनाकानी की परन्तु प्रथम वचन दे चुकी थी, इसलिये श्रीकृष्ण के साथ जाकर रथ में जुतना ही पड़ा और जब यह अनोखा रथ दुर्वासा जी के समीप आया, तो वे न केवल स्वयं ही उस पर सवार हुए किन्तु बहुत से शिष्यों को भी अपने साथ बैठा लिया और लगाम स्वयं सँभाल ली। उन्होंने कोड़े मार-मार कर रुक्मिणी की पीठ लाल कर दी। जब सर्वथा ही थक गये तो उतर कर भगवान श्रीकृष्ण को छाती से लगा लिया (देवताओं ने पुष्पों की वृष्टि आरम्भ कर दी) और कहा कि तुम सचमुच ईश्वर हो, हमारे शिष्य नहीं

बल्कि गुरु हो। देवताओं के कहने से मैं केवल तुम्हारी परीक्षा लेने के लिये आया था।

पाठकगण! आप अनुमान कर लें कि श्रीकृष्ण को इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने से कितनी प्रसन्नता हुई होगी। सच पूछिये तो इस सफलता विशेष ने ही उनको इतने बड़े पद पर पहुँचा दिया जिस पर कि और किसी का पहुँचना दु:शक्य है।

अन्त में, जिस प्रकार नदी से पार होने का साधन नौका, दूध से मक्खन निकालने का साधन मथनी, अन्धेरे को दूर करने का साधन सूर्य अज्ञान को नष्ट करने का साधन ज्ञान, ज्ञान को प्राप्त करने का साधन गुरु की सेवा, जीवित रहने का साधन श्वास है, उसी प्रकार प्रभु को पाने का साधन अखण्ड प्रेम-भक्ति है।

जिन्होंने गुरु सेवा में अपने अस्तित्व को भुलाया है, ऐसे महान् सद्शिष्य संसार में सदा से होते आये हैं और आगे भी ऐसे शिष्य होते ही रहेंगे।

---

१. पहले जमाने में एक गुरु के दस सहस्र (१०,०००) शिष्य होते थे, जोकि प्राय: उनके साथ ही रहते थे और शिक्षा का काम बराबरी ठीक चलता रहता था। ऐसे ऋषि को कुलपति कहते थे। एक जमाना अब है कि सौ शिष्यों को सौ ही अध्यापक चाहिये, फिर भी प्रबन्ध अधूरा रहता है।

- रामतीर्थ कुंज, ग्राम +पो. राँकोडीह, वाया - कोशी कॉलेज,
जिला - खगड़िया - 851205 (बिहार)।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७३, सं.१-२
अप्रैल-मई, २०२४

कपिल का देवहूति को आत्म ज्ञान

- कृष्णचन्द्र टवाणी

श्रीमद्भागवत में ऐसी कथा आई है कि भगवान् ने कपिल मुनि के रूप में अवतार लिया था। महर्षि कर्दम और माता देवहूति ने जब पुत्र-प्राप्ति के लिए बड़ी तपस्या की तो भगवान ने दर्शन दिया और अपनी अभिलाषा प्रकट करने को कहा। महर्षि बोले- ''प्रभु! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो यह वर दें कि हमारे यहाँ आप जैसा ही पुत्र उत्पन्न हो।'' भगवान बोले ''मुझ जैसा पुत्र कैसे होगा, मैं ही स्वयं तुम्हारे यहाँ जन्म लूँगा।''

दिन जाते देर न लगी। माता देवहूति की कोख से अत्पन्न तेजस्वी बालक का प्रादुर्भाव हुआ जिसका नाम कपिल रखा गया। पुत्र पाकर माता-पिता आनन्द-विभोर हो उठे।

इस प्रकार वर्षों बीत गये। महर्षि वृद्ध हो चले थे, संन्यास लेने का विचार किया। जब यह जाना कि महर्षि संन्यास लेने जा रहे हैं- देवहूति व्याकुल हो उठी। कपलि ने जिज्ञासा प्रकट की- ''पिताजी, सन्यास क्यों ले रहे हैं?'' महर्षि ने बतलाया- ''पुत्र! संन्यास लेने से घर संसार के कामों से छुटकारा मिल जायेगा और ईश्वर भजन के लिए पर्याप्त समय मिलेगा। जब तक गृहस्थी बने रहेंगे, तुम दोनों माँ-बेटे की मोह-ममता भी भजन में बाधक होगी। विरक्त बनकर ही उस अमृत तत्व परमात्मा को पा सकेंगे और भव मुक्ति लाभ हो सकेगा।''

कपिल जी तो भगवान के अवतार ही थे। पिता की बातें सुन बड़ी नम्रता से ''गृहस्थ'' और ''विरक्त'' का सही अर्थ बताते हुए उन्होंने कहा कि- ''दुनिया के कामों में दिन-रात लगे रहने वाले को ही गृहस्थ नहीं कहते यह जो जीवात्मा है, वह परमात्मा से अलग हो गया है और पंचकोश रूपी गृह में कैदी की भाँति स्थित है।''

जीवात्मा की इस बन्धन युक्त अज्ञान-अवस्था को ही ''गृहस्थी'' कहते हैं। और विरक्त वह नहीं जो संसार के कामों को त्याग कर जंगल में जाकर रहे वरन् जीवात्मा की उस बन्धनमुक्त और विवेकपूर्ण दशा को ''विरक्ति'' कहते हैं। जब वह पंचकोशों को त्यागते हुए जिस परमात्मा से अलग हुआ है, उससे मिलकर उसी प्रकार मुक्ति लाभ करता है जिस प्रकार पाँच मंजिलों में वास करने वाला व्यक्ति नीचे ऊपर की सब मंजिलों पर आने-जाने के रास्तों को अच्छी तरह जानता है और जब चाहे तभी उन सबको छोड़ते हुये ऊपरी मंजिल पर पहुँच कर उन्मुक्त

आकाश में मिलकर मकान के मंजिलों की कैद से छूटा हुआ आनन्द अनुभव करता है। पुत्र के मुख से ऐसे अद्‌भुत ज्ञान को सुनकर महर्षि फूले न समाये। किन्तु एक बात उन्हें खटकी। पूछा- ''पुत्र, यह तो बतलाओ कि जब पाँच मंजिलों में रहने वाला मनुष्य आखिरी मंजिल पर पहुँच जायेगा तो आकाश से पूर्ण रूप से कैसे मिलेगा?'' कपिल ने कहा- ''पिता जी, इसके उत्तर में मैं क्या कहूँ? यह तो बिल्कुल अनुभवगम्य बात है। फिर भी समझने के लिए इतने से ही संतुष्ट हो जाये कि स्थूल शरीर में स्थूल तौर से बँधे रहने के कारण जीव पूर्णरूपेण परमात्मा में लय नहीं हो सकता, वह तो स्थूल का आधार उसी प्रकार लिए हुए रहता है जिस प्रकार अन्तिम मंजिल पर पहुँचा हुआ मनुष्य छत का आधार तो लिए रहता है, फिर भी आकाश के वातायन में ही रहता है।'' इसके बाद महर्षि ने अनजान बनते हुए पूछा- ''पुत्र, क्या मनुष्य को स्थूल शरीर के अलावा और शरीर भी प्राप्त है?'' कपिल बोले- ''हाँ पिता जी! मनुष्य के शरीर तीन हैं- स्थूल, सूक्ष्म और कारण यह जो आपके सामने देखने में आ रहा है, वह स्थूल शरीर है। इसमें पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता है। सूक्ष्म शरीर तो देखने में नहीं आता पर उसके कार्य, भाव-भावना तथा विचार लिये रहते हैं और कारण शरीर साक्षीभूत आत्मा के प्रकाश से स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरों को चैतन्यता प्रदान करता है। क्योंकि स्थूल तो जड़ है ही, मन भी जड़ है।''

बीच में माता देवहूति बोल उठी- ''पुत्र! क्या बुद्धि भी जड़ है?'' कपिल ने कहा- ''हाँ माँ, बुद्धि भी जड़ है। ''इस सृष्टि की रचना पच्चीस तत्वों से है। अपरा प्रकृति के पाँच तत्त्व- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश'' और परा प्रकृति के तीन तत्त्व मन, बुद्धि और अहङ्कार मिलकर मुख्यत: आठ तत्त्व हुए। पच्चीसवाँ तत्त्व आत्मा है। केवल आत्मा के ही प्रकाश से अन्य तत्त्व चैतन्य होकर कार्यशील रहते हैं। यदि आत्मा की ओर से उन तत्त्वों में चैतन्य शक्ति जाना बन्द हो जाय तो वे सब उसी यंत्र की तरह जड़वत हो जाते हैं जो विद्युत-धारा से सम्बन्ध कटने पर काम करना बन्द कर देता है।

''वैसे तो माँ! मन ही सब इन्द्रियों पर बैठ कर कार्य करता है, सुख और दु:ख का अनुभव करता है तथा रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि का आनन्द होता है किन्तु आनन्द और शरीर का स्रोत तो आत्मा ही है। माता ने फिर पूछा ''पुत्र! उस आनन्द भण्डार आत्मा में मन कैसे तय हो?''

कपिल ने बहुत सरल ढंग से कहा- ''माँ! इसके लिये पिताजी की तरह घर-बार त्याग एकान्त सेवन की आवश्यकता नहीं। इसका उपाय भी सीधा सादा बतलाता हूँ जिसे तुम घर के काम-काज के बीच व्यस्त रहते हुए ही बड़ी सुगमता से कर सकती हो। माता देवहूति अधीर हो उठी। ब्रह्म विद्या को इतना सरल जान विस्मित हो गयी। बोली- ''देर मत करो पुत्र!

जल्दी बतलाओ।'' पल भर के लिए कपिल गम्भीर हो गये फिर बोले- माँ तू मेरे मन में अपने मन को मिला क्योंकि मेरा मन शांत और निर्विकार है, परमात्मा से मिला हुआ है और वह उस अक्षय शक्ति स्रोत आनन्द भण्डार में लय है।'' माता देवहूति को रोमांच हो आया, पूछा- ''पुत्र! तेरे मन से अपने मन को मिलायें कैसे? आत्मिक ओज से ओत-प्रोत हुए कपिल ने स्नेह भरी वाणी में कहा- माँ तू केवल मेरा ही ध्यान किया कर।'' अर्थात् प्रभु के ध्यान में मन लगाकर ही एकाग्रता प्राप्त की जा सकती है। माता पुत्र संवाद को सुनकर महर्षि हर्षित थे। विरक्त बनने के लिए उन्होंने तो संन्यासाश्रम की शरण ली किन्तु माता देवहूति ने पुत्र की बतायी विधि से घर बैठे ही संसार के सब व्यवहार को यथावत बरतते हुए आत्म-ज्ञान प्राप्त किया।

- महासचिव ज्ञानमंदिर, सिटी रोड़, मदनगंज, किशनगढ,
(राजस्थान) 305801

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७३, सं.१-२
अप्रैल-मई,२०२४

महाभारत में कुण्ठाग्रस्त शकुनि

- सुशव सिंह

प्रत्येक मानव के अन्दर एक महाभारत चलता रहता है। कौरव, पाण्डव, धतृराष्ट्र, द्रौपदी आदि हमारे ही चलने वाली भावनाओं, संवेदनाओं, विकारों आदि के प्रतीक हैं। उदाहरण के लिये कुछ पात्र जैसे- धृतराष्ट्र नेत्रहीन होने के साथ-साथ बुद्धिहीन भी हैं, सौ कौरव हमारे अन्दर की सौ भावना हैं, पांच पाण्डव हमारी पांच इन्द्रियाँ हैं, द्रौपदी हमारे मन की उत्तेजना अथवा प्रवल इच्छा है, कृष्ण सारथी अथवा नेतृत्व करने वाली हमारे अंदर की एक शक्ति है, कर्ण हमारा अहंकार है। परन्तु हमें यहां इन सब पर विचार न करके महाभारत के एक अख्यान पर प्रकाश डालना है, जो इस प्रकार है-

शान्तनु पुत्र भीष्म कुरु राजकुमार नेत्रहीन धृतराष्ट्र के विवाह का प्रस्ताव लेकर गांधार जाते हैं। वहां गान्धार राज सुबल तथा उनका पुत्र शकुनि विवाह प्रस्ताव को अस्वीकार कर देते हैं परन्तु भीष्म के दबाव में आकर गांधार राज को इस विवाह को स्वीकृति देनी पड़ती है। गांधारी भी सहर्ष विवाह प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है तथा अपनी आंखों में पट्टी भी बाँध लेती है क्योंकि वह अपने पति के दु:ख को अपना दु:ख बना लेता चाहती है। राजा सुबल गांधारी के साथ अपने पुत्र शकुनि को हस्तिनापुर भेज देता है जहाँ नेत्रहीन धृतराष्ट्र और गांधारी का विवाह हो जाता है। गांधारी धृतराष्ट्र के साथ विवाह से पहले एक बकरे की विधवा थी। किसी प्रकोप से मुक्ति के लिये ज्योतिषयों ने गांधारी का विवाह एक बकरे से करा दिया था और फिर बकरे की बलि भी दे दी गई थी। इस बात की जानकारी जब धृतराष्ट्र को मिली तब उसने क्रोधित होकर गांधार पर आक्रमण कर दिया तथा गांधारी के पिता सुबल, माता सुदर्भा, शकुनि सहित १०० पुत्रों को जेल में बंद कर दिया। जेल में सभी के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया जाता था। प्रतिदिन एक मुट्ठी अनाज ही सबको खाने के लिए दिया जाता था। जिससे एक-एक दाना ही सबके हिस्से में आता शनैः शनैः कई पुत्रों की मृत्यु हो गई। राजा सुबल ने कुरु वंश से बदला लेने के लिये अपने पुत्रों में से सर्वाधिक बुद्धिमान एवं शक्तिशाली पुत्र शकुनि को बचाने का फैसला लिया। सभी अपने हिस्से का भोजन शकुनि को देने लगे। शकुनि ने अपनी आंखों के समक्ष अपने परिवार को मरता देखा था। मृत्यु से पहले राजा

सुबल ने धृतराष्ट्र से शकुनि को जेल से मुक्त करने की विनती की, जिसे धृतराष्ट्र ने स्वीकार कर लिया।

शकुनि अपनी बहन गांधारी से बहुत प्रेम करता था। अत: कुरुवंश से बदला लेने के लिये उसने कुरुवंश की जड़ों को खोदना प्रारम्भ कर दिया। वह प्रत्येक क्षण दुर्योधन के कान भरता रहता था, जिससे कौरव-पण्डवों के मध्य गहरी खाई बनती चली गई। शकुनि के पिता सुबल ने पहले ही शकुनि को बता रखा था कि उसकी हडिडयों से वह चौसर खेलने वाले पासे बनवाये। शकुनि ने उनके कथनानुसार कुछ हड्डियों से पासे बनवाये जो सदैव शकुनि का ही कहना मानते थे। उन्हीं पासों से चौसर खेलने के कारण ही पाण्डव सब कुछ हार गये, द्रोपदी का वस्त्रहरण भी हुआ। पाण्डव शकुनि के लंगड़ेपन का मज़ाक उड़ाते थे। अत: पाण्डवों के प्रति भी घृणा उसके हृदय में पनपती चली गई और प्रतिशोध की भावना भी अत्यधिक घर कर गई। इसका ही परिणाम हुआ महाभारत।

- सिविल लाईन, मैडीकल कालेज के सामने,
मुरादाबाद - 244001 (उ.प्र.)

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

रावण और सीता जी में संवाद का नाट्यरूपान्तर

- ज्योति खन्ना

महाभारत वन पर्व के रामोपाख्यान पर्व में अध्याय २८१ में रावण और सीता जी के संवाद का वर्णन है। जब वैशम्पायन जी ने जनमेजय से रावण और सीता के संवाद को बताया।

मार्कण्डेय जी युधिष्ठिर से कहते हैं-

हे युधिष्ठिर, वियोग पीड़ित माँ सीता अशोक वाटिका में संतप्त हृदय से मैले कुचैले वस्त्रों में शिला पर बैठी हैं जहाँ उन्हें चारों तरफ से राक्षसियों ने घेरा है। दीन भाव है। आँखों में अश्रु हैं, चित्त उदास हैं। देवता, दानव, गन्धर्व, मानव कोई भी हितैषी नज़र नहीं आ रहा।

विचित्र माणिक्य, मोती मालाएँ पहन, कुण्डल धारण किए, कांतिमयी वसन व मुख मण्डल आभा से परिपूर्ण, मुकुट पहने रावण का प्रवेश होता है। शोभा सम्पन्न कामवेदना से व्यथित रावण आते ही सीता जी के समीप आकर अनुनय करने लगा।

रावण :- सीते ! आज तक जो तुमने अपने पति पर अपना इतना अनुग्रह दिखाया है, बहुत हुआ, तन्वंगि! हे वरारोहे! मुझे स्वीकार कर अंगीकार करो।

रावण :- मैं सम्पन्नता का शिखर हूँ वस्त्राभूषण बहुमूल्य रत्न, मोती-माणिक्य स्वीकार करो, मैं तुम्हें पटरानी बनाने में सक्षम हूँ। मेरे महल में देवताओं की कन्यायें गन्धर्वों की युवतियाँ, रमणियाँ मेरी भार्याए है। चौदह करोड़ पिशाच मेरी आज्ञा में दिन दात रहते है।

रावण :- नरभक्षी राक्षस मेरे सेवक है। तिगुनी संख्या में यक्ष हैं। महान बलशाली राक्षस व यश मेरे भाई कुबेर की सेवा में रहते हैं। मेरे भ्राता धनाध्यक्ष कुबेर है। भद्रे ! मधुपान करने बैठ जाऊँ तो मेरी दासियाँ, अप्सारएँ सभी मेरा मन बहलाने को तत्पर रहती है।

सीते! मैं विश्रवा ऋषि पुत्र अखिल समृद्धियों व सम्पन्नताओं का दाता हूँ, इन्द्र, वरुण, यम ये चार लोकपाल हैं पाँचवाँ मेरा यश कीर्तिमान है। देवराज इंद्र की भाँति मेरी कीर्ति बलशाली है।

रावण :- हे सुश्रोणि! वनवास का कष्ट समाप्त करो, आओ, मेरी भुजाओं में आओ, हृदय से लग जाओ। मन्दोदरी की भाँति मेरी भार्या हो जाओ। तुम इन सब कष्टों के लिए नहीं बनी हो, सुन्दरी!

सीता जी ने अपना मुँह फेरा, तिनके की ओट की राक्षसों के लिए अमंगलसूचक आँसुओं से स्वयं को भिगाती हुई उस निशाचर से बोली-

सीता जी :- राक्षसराज! तुम्हारे मुख से ऐसी

दुखदायिनी बातें अनेक बार निकली हैं और मैं अभागन उन्हें सुन रही हूँ।

हे भद्रसुख! तुम्हारा भला हो, तुम अपना हृदय मेरी ओर से हटा लो, मैं पतिव्रता तुम्हारे लिए पराई स्त्री हूँ, इस वक्त अबला हूँ। तुम मुझे नहीं पा सकते।

सीता जी:- मैं दीन मानव कन्या, तुम्हारे राज-काज व पिशाच की भार्या होने योग्य नहीं हूँ।

मुझ अबला को अपमानित न करो। तुम्हारे पिता ब्रह्मण थे तुम ब्राह्मण हो। ब्रह्मा से उत्पन्न होने के कारण वे सभी ब्रह्म समान हैं। धनाध्यक्ष कुबेर को अपना भाई संबोधित करते आपको लज्जा नहीं आती। ऐसा कहकर तन्वंगी सीता कपड़े से मुँह ढककर फूट-फूटकर रोने लगी। उस समय भामिनी सीता क्रोधित होकर नागिन के समान लग रही थी। सीता के मुख से निष्ठुर वचन सुनकर भी, कोरा उत्तर पाकर भी कहने लगा-

रावण :- सीते, भले ही कामदेव मुझे इस वक्त पीड़ा दे रहे हैं, मैं तुम जैसी मनोहर मुस्कान वाली स्त्री को मनाकर ही समागम करूँगा। मैं तुम्हें मनाकर ही रहूँगा।

सीता :- दिवा स्वप्न देखना छोड़ दो राक्षसराज!

रावण :- मैं दसों दिशाओं का बल अपनी भुजाओं में रखता हूँ चाहूँ तो बल का प्रयोग कर तुम्हें पा लूँ परन्तु मैं तुम्हे मनाकर प्रेम पूर्वक तुमसे संबंध बनाऊँगा।

सीता :- अरे राक्षसराज, तुम यहां से चले जाओ, कहीं मेरा क्रोध तुम्हे जला न डाले।

रावण :- घमंड से हुँकार भरते हुए, त्रिजटा, त्रिजटा सुनो कहाँ हो तुम। त्रिजटा उपस्थित हो जाती है।

रावण :- त्रिजटे! तुम इस परम सुन्दरी की सेवा में दिन रात लगी रहो, जब तक यह मान न जाए इसे हमारी कीर्ति व यश का बखान करती रहो। (त्रिजटा - सहमति में सिर हिलाती है)

रावण :- वहां से क्रोधावस्था में निकल जाता है।

सीता :- जोर-जोर से रोना शुरू कर देती है।

रावण :- मैं फिर आँऊगा, फिर आऊँगा। तब तक तुम अपने वनवासी पति को याद कर लो

देखता हूँ कब तक - कब तक.......?

- खन्ना कॉटेज, गली न. 15, कृष्णा नगर, होशियारपुर।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७३, सं.१-२
अप्रैल-मई ,२०२४

महाभारत में सेर भर सत्तू

- वीरेन्द्र सिंह भार्गव

मानवीय सभ्यता और भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में प्राचीनकाल से महर्षि वेदव्यास द्वारा विरचित संस्कृत भाषा में महाकाव्य महाभारत का अभिन्न स्थान है। इस महाकाव्य में तत्कालीन भारतीय धर्मव्यवस्था के अंतर्गत सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, और नैतिक विधाओं का समावेश है जिनको अनेक परस्पर पूरक गाथाओं के द्वारा उजागर किया गया है। विश्वप्रसिद्ध धर्मग्रंथ भगवद्गीता भी इसी महाकाव्य का अंश है जिसमें परब्रह्म के अवतार श्रीकृष्ण ने महायुद्ध के आरंभ होने से पूर्व पांडव अर्जुन को उपदेश दिया था। कुरुक्षेत्र की रणभूमि में जब अर्जुन ने शत्रुपक्ष कौरवों में अपने निकट सगे-संबंधियों को देखा था तो उसने मोहग्रस्त होकर युद्ध नहीं करने का निर्णय किया। तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को धर्मोपदेश देकर न केवल अर्जुन के क्षत्रिय होने के स्वाभाविक कर्म यथा युद्ध करने को उचित बतलाते हुए प्रेरित किया अपितु स्वयं के ईश्वर होने का परिचय व विराट स्वरूप का दर्शन भी करवाया। साथ ही समाज में मान्य चारों वर्णों यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के स्वाभाविक कर्म का वर्णन करते हुए स्पष्ट रूप से कहा कि किसी भी वर्ण का व्यक्ति अपने अपने स्वाभाविक कर्म को करते हुए अंततः ईश्वर को प्राप्त करेंगे। महाभारत युद्ध में क्षत्रिय महारथियों के साथ-साथ कुछ ब्राह्मण महारथियों ने भी युद्ध लड़ा था जो कि ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म की अवधारणा से अलग प्रतीत होता है। यहाँ सहज जिज्ञासा होती है कि क्या ये दोनों वर्ण एक ही धर्म के अंतर्गत होकर परस्पर पूरक हैं अथवा विरोधी हैं? इसका समाधान महाभारत ग्रंथ में वर्णित सेर (लगभग एक किलोग्राम) भर सत्तू की गाथा से होता है। संक्षेप में गाथा इस प्रकार है- कुरुक्षेत्र में महाभारत युद्ध जीतने के उपरांत पांडव युधिष्ठिर राजसिंहासन पर बैठे। युधिष्ठिर ने महायज्ञ का आयोजन किया जिसमें अनेक राजागण और विद्वान् ब्राह्मण आए। संपूर्ण देश में घोषणा कर दी गई थी कि कोई भी किसी भी वर्ण का याचक हो वह भरपूर दान लेकर जा सकता है। महायज्ञ के अंतिम दिन आने तक पांडवों में अहंकार जाग्रत हो गया कि संसार में ऐसा भरपूर दान देने वाला महायज्ञ वे करवा रहे हैं जिसकी कोई तुलना नहीं है। यज्ञशाला में उपस्थित सभी ने देखा कि कहीं से एक विचित्र नेवला जो आधा सोने का

और आधा साधारण शरीर वाला था वह आकर वहाँ लोटने लगा था। वह नेवला ने नि:संकोच सभी उपस्थित लोगों को देखकर कहा कि "हे महानुभावो! आप लोग सोच रहे होंगे कि आपने सबसे बड़ा यज्ञदान किया है किन्तु यह आप लोगों का भ्रम है। आप लोगों के यज्ञदान की एक गरीब ब्राह्मण के द्वारा दिये गए एक सेर सत्तू के दान से बराबरी नहीं हो सकती है। नेवले की बात सुनकर उपस्थित महायज्ञ सम्पन्न करवाने वाले ब्राह्मणों ने प्रतिवाद किया कि "यह महान् यज्ञ शास्त्र विहित सभी सामग्रियों और विधियों से किया गया है। मंत्र-पाठ में कोई त्रुटि नहीं हुई और अग्नि में आहूतियाँ भी उचित रीति से दी गई हैं। चारों वर्णों के लोग पूर्णतया संतुष्ट हैं और याचकगण भरपूर दान प्राप्त करके प्रसन्न होकर जा रहे हैं। जब इस महायज्ञ और महादान को किस कारण से दोषयुक्त बतला रहे हो? नेवले ने उनकी शंका का समाधान करते हुए कहा कि कुरुक्षेत्र में महायुद्ध होने से पहले वहाँ एक निर्धन ब्राह्मण रहता था जिसके परिवार में पति-पत्नी और पुत्र-पुत्रवधु मिलकर चार सदस्य थे। ब्राह्मण निकट खेतों में फसल कटने के समय बिखरे हुए अन्न के दानों का चुनकर इकट्ठा करके परिवार में बराबर बांट कर खा लेते थे। एक अवसर पर वर्षा न होने से अकाल पड़ गया और अन्न पैदा नहीं हुआ। ब्राह्मण परिवार को कई दिनों तक भूखा रहना पड़ता था। संयोगवश एक दिन बहुत दूर तक घूम कर उस ब्राह्मण ने लगभग एक सेर अन्न एकत्रित किया। उस अन्न को भूनकर उसका सत्तू बना लिया और चारों सदस्यों ने बराबर बराबर बाँट लिया। भगवान् को अर्पित करने की प्रार्थना के साथ जैसे ही ब्राह्मण ने भोजन करना चाहा कि अचानक कोई भूखा ब्राह्मण वहाँ आकर भोजन की याचना करने लगा। निर्मल हृदय गृहस्थ ब्राह्मण ने "अतिथि देवो भव:" की भावना के अनुरूप अपना सत्तू अतिथि को खिला दिया। तब गृहस्थ पत्नी ने अपने भाग का सत्तू उस अतिथि को अपने पति को यह कहते हुए खिला दिया कि मैं आपकी सहधर्मिणी हूँ अत: धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि पर हम दोनों का समान अधिकार है। अतिथि की भूख नहीं मिटी थी तब गृहस्थ पुत्र ने यह कहते हुए अपने भाग का सत्तू अतिथि को अर्पित कर दिया कि "पिता ही तो पुत्र बनता है इसलिए मेरे हिस्से का सत्तू भी आपका है।" तीसरा भाग खाने के उपरांत भी अतिथि का जब पेट नहीं भरा तब पुत्र वधु ने भी यह कहते हुए अपना भाग अतिथि को अर्पित कर दिया कि गृहस्थ ब्राह्मण मेरे स्वामी के पिता हैं जिनको मैं ईश्वर तुल्य मानती हूँ इसलिए मेरा भाग भी स्वीकार करना होगा। भोजन से तृप्त होकर अतिथि ने प्रसन्न होकर कहा कि सैकड़ों राजसूय यज्ञ और अश्वमेध यज्ञ आपके इस भोजन दान की बराबरी नहीं कर सकेंगे। आपको लेने के लिए यह दैवी विमान आ गया है और आप सभी स्वर्ग लोक प्राप्त

करने के अधिकारी बन गए हैं। यह कहकर विष्णुरूप अतिथि देव अंतर्धान हो गए। दानदाता ब्राह्मण परिवार उसी रात्रि को स्वर्ग सिधार गए। उस घटना को नेवला देख रहा था ओर उसने वहाँ आकर अतिथि देव ब्राह्मण के भोजन करने वाले स्थान पर बिखरे सत्तू के अन्नकणों को सूंघा, चाटा और वहाँ लोटने लगा। उस कण स्पर्श से नेवला आधा स्वर्णिम शरीर वाला बन गया। तब नेवले में अभिलाषा जागी कि उसका बचा खुचा शरीर भी स्वर्णमय हो जए और इसी उद्‌देश्य को लेकर वह महायज्ञ मंडप में आ पहुँचा। यज्ञमंडप में भोजनालय में खूब लोट पोट करने के उपरांत भी उसका बचा हुआ शरीर वैसा का वैसा ही रहा। उस विचित्र आधे सुनहरे शरीरधारी नेवले के कथन को सुनकर गर्वीले पांडवों का महायज्ञ में महादान करने का अहं नष्ट हुआ। महाभारत युद्ध के पूर्व में जहाँ अर्जुन अपने सगे संबंधियों का वध नहीं करने की भावना से मोहग्रस्त हुआ था तो समानांतर इस गाथा के गृहस्थ निर्धन ब्राह्मण परिवार ने स्वयं के प्राणों का मोह त्याग कर 'अतिथि देवो भव' धर्म का पालन करके प्राण त्याग दिये थे।

- 12, महावीर नगर, जयपुर - 302018 (राजस्थान)।

मो. 9829832632

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विष्णुसहस्रनाम में धर्म साधना का स्वरूप

- आदित्य आंगिरस

विष्णुसहस्रनाम महाभारत के पंचरत्नों में आगत एक वैष्णव चेतना प्रधान अद्भुत स्तुति परक स्तोत्र रचना है जिसमें विष्णु के गुणाधारित 1000 नामों का वर्णन दिया गया है। यह स्तोत्र हिंदू धर्म में प्रचलित अवधाराणाओं के अनुसार यह वैष्णव चेतना प्रधान भक्तिकाव्य सबसे पवित्र और लोकप्रिय स्तोत्रों में प्रमुखतम है जिसमें हिन्दू संस्कृति एवं आस्था के अनुसार भगवान विष्णु के दिव्य नाम का स्मरण है क्योंकि भगवान विष्णु में ही सत्व गुण स्थित है एवं वे ही एकमात्र इस गुण के अधिष्ठातृ देवता और संसार का पालन करने वाले हैं। अत: ऐसी मान्यता भी प्रचलित है कि विष्णु सहस्रनाम के पाठ से सहज ही काशी, कुरुक्षेत्र, गया तथा द्वारका आदि जाने का तथा सभी वेदपुराण-शास्त्रों के स्वाध्याय का व मंत्र-जप करने का समस्त पुण्य प्राप्त होता है और साथ ही साथ भक्त के जन्म-जन्मान्तर जन्य सभी प्रकार के दु:ख-दारिद्रय आदि दूर हो जाते हैं। साथ ही ऐसी भी मान्यता प्रचलित है कि सहस्रनाम का पाठ रोग हरने वाला, राज्य-सुख देने वाला, पुत्र-पौत्र देने वाला, आयुप्रद और सभी प्रकार से लाभदायक है। अत: सहस्रनाम के एक-एक अक्षर की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है । वामन पुराण में भगवत्पाद के संदर्भ में कहा गया है-

नारायणो नाम नरो नराणां
प्रसिद्धचौर-कथित-पृथिव्याम् ।
अनेकजन्मार्जित पापसंचयं
हरत्यशेषं श्रुतमात्र एव ।।[1]

अर्थात् पृथ्वी में नारायण नाम का एक प्रसिद्ध 'चोर' है जो कानों के माध्यम से शरीर में प्रवेश करते ही मनुष्यों के पूर्व जन्मार्जित पापों के सारे संचय को एकदम चुरा लेता है अर्थात् नारायण शब्द मात्र उच्चारण मनुष्य की आत्यन्तिक मुक्ति का एक मात्र साधन है ।[2]

पृष्ठभूमि

महर्षि व्यास वास्तव में संस्कृत के एक असाधारण विद्वान थे जिनके द्वारा महाभारत जैसा असाधारण ग्रन्थ प्रणीत किया गया है। इसी ग्रन्थ के अन्तर्गत विष्णु सहस्रनाम नारायण अथवा भगवान विष्णु की प्रत्यक्ष स्तुति है जो स्वयं में कालातीत है एवं साधक को पूर्णत: मानसिक एवं आध्यात्मिक शान्ति प्रदान करने वाली है। इसके पीछे की कथा के अनुसार एक बार पांडवों में सबसे बड़े, युधिष्ठिर, जीवन में पालन करने वाले

श्रेष्ठतम धर्म के बारे में भ्रमित हुए। उन्होंने श्रीकृष्ण से संपर्क कर उत्तम धर्म की विशिष्टता को समझने का प्रयास करते हुए धर्म के तत्त्व को समझने का प्रयास किया परन्तु परिस्थितिवश उन्होंने युदिष्ठिर को गीता का ज्ञान नहीं दिया, इसके बजाय कृष्ण युधिष्ठिर को युद्ध के मैदान में महान योद्धा भीष्म पितामह के पास ले गए जो अर्जुन के बाणों से घायल मृत्युशैया पर लेटे हुए थे। श्रीकृष्ण की सलाह पर, युधिष्ठिर ने छह सवालों के साथ भीष्म से जीवन के सभी पहलुओं पर मार्गदर्शन मांगा, तब पितामह भीष्म लेटे हुए ही श्रीकृष्ण को प्रणाम करके उत्तर देते हुए धर्म के वास्तविक तथ्य का व्याखान करते है कि जिसने सभी को जीवन दिया है और जो सभी के पालन करने में व्यस्त है उसके समक्ष सभी को संपूर्ण रूप से श्रद्धापूर्वक समर्पण करना चाहिए। केवल वह तत्त्व मात्र ही वास्तविक धर्म का आदिम स्रोत है। अतः नारायणी चेतना के प्रति आस्था एवं श्रद्धा ही साधक को सभी पापों से मुक्त करने में सक्षम है। तत्पश्चात् भीष्म ने भगवान विष्णु के एक हजार नाम बताते हुए इस स्तोत्र का पाठ करते हैं। कुरुक्षेत्र युद्ध के मैदान में ऋषि व्यास और कृष्ण इस क्षण के साक्षी थे और महाभारत के इस भाग को विष्णु सहस्रनाम कहा गया।

यहां यह बताना आवश्यक है कि विष्णु सहस्रनाम जहां हिंदुओं के बीच लोकप्रिय है वही दूसरी ओर वैष्णवों के लिए यह स्तोत्र आत्मनिवेदन के माध्यम से ईश्वर प्रार्थना का एक प्रमुख हिस्सा है। वैष्णव मान्यता के अनुसार समस्त देवतागण भी श्रीकृष्ण को इस विश्व का वास्तविक तत्त्व मानते हुए केवल उनकी पूजा करते हैं एवं एकमात्र वे ही इस संसार में पूज्य है। उनका मानना है कि समस्त देवता एकमात्र वैष्णवी चेतना की अभिव्यक्ति मात्र है। इस मान्यता के अनुसार सहस्रनाम में आगत शिव आदि सभी शब्द वैष्णवी चेतना को ही संदर्भित करते हैं। सहस्रनाम के पाठ में विश्वास करने वालों का दावा है कि यह मन की अटूट शांति, तनाव से पूर्ण मुक्ति और शाश्वत ज्ञान लाता है। रूढ़िवादी हिंदू परंपरा में, एक भक्त को उपनिषद, गीता, पुरुष सूक्त के साथ ही साथ विष्णु सहस्रनाम का जाप करना चाहिए। ऋग्वेद के एक सूक्त में कहा गया है, ''हे! तुम जो सर्वोच्च सत्य की अनुभूति प्राप्त करना चाहते हो, दृढ़ विश्वास के साथ कम से कम एक बार विष्णु का नाम बोलो। यह आपको इस तरह की अनुभूति की ओर ले जाएगा''।[४]

यह बात महत्वपूर्ण है कि विष्णु सहस्रनाम में भी कुछ नाम से शिव को संदर्भित किया गया हैं उदाहरण के तौर ''शिवः स्थाणुः निधिरव्ययः'' अथवा ''ईशानः प्राणदः प्रणवः'' अथवा ''रुद्रो बहुशिरः विश्वयोनि'' को हम ले सकते हैं। आदि शंकराचार्य अपने भाष्य में कहते है कि शिव की सत्ता वास्तव में विष्णु का ही कल्याणतम अंश हैं एवं ''केवल हरि की ही शिव जैसे नामों से स्तुति

की जाती है''। यह स्थिति वास्तव में वैष्णवो चेतना के प्रमुख टिप्पणीकार पाराशर भट्ट की व्याख्याओं के अनुरूप है । पराशर भट्ट ने भी शिव शब्द की व्याख्या वैष्णवी चेतना के संदर्भ में करते हुए कहा है कि ''शिव सृष्टि में वास्तव में वह तत्त्व है जो सभी प्रकार की शान्ति एवं शुभता प्रदान करता है'' ।[६] यद्यपि, शिव पद की इस व्याख्या को विष्णु सहस्रनाम पर शंकर की टिप्पणी को स्वामी तपस्यानंद के अनुवाद द्वारा नयी व्याख्या दी है जिसमें वे मानते हैं कि शिव पद का वास्तविक अर्थ यह हो सकता है कि ''वह जो प्रकृति, सत्व, रजस और तमस के तीन गुणों से प्रभावित नहीं है एवं त्रिगुणातीत पद है'' ।[७] कैवल्य उपनिषद भी इसी प्रकार का अपना मत हमारे सामने प्रस्तुत करता है कि, ''वह (विष्णु पद) ब्रह्मा और शिव दोनों हैं । यह स्वयं विष्णु हैं जो शिव की स्तुति और पूजा से गौरवान्वित होते हैं''।[८] इस आम तौर पर प्रचलित अद्वैतवादी दृष्टिकोण के आधार पर सृष्टि में केवल मात्र एक ही वास्तविक तत्त्व है जो क्रमशः उत्पत्ति, संरक्षण और आलय का स्थान है एवं भक्त अपनी निजी आस्था के अनुरूप उस परम तत्त्व को देखता है। चूंकि कई संस्कृत शब्दों के कई अर्थ होते हैं, इसलिए यह संभव है कि इस उदाहरण में विष्णु और शिव दोनों के नाम समान हैं, उदाहरण के लिए, शिव नाम का अर्थ ही ''शुभ'' है जो विष्णु पर भी लागू हो सकता है[९] । देवता अनंत पद्मनाभ और शंकरनारायण की हिंदू पूजा करते हैं, जैसे कि पांडुरंग विट्ठल, कृष्ण का एक रूप जिसके मुकुट पर शिवलिंग है, जो दोनों देवताओं की एकता का प्रतीक है । हालाँकि, रामानुजाचार्य के अनुयायी, वैष्णव टीकाकार पराशरभट्ट ने विष्णु सहस्रनाम में ''शिव'' और ''रुद्र'' नामों की व्याख्या विष्णु के गुणों या विशेषताओं के रूप में की है, न कि यह इंगित करने के लिए कि विष्णु और शिव एक ही भगवान हैं। वैष्णव विष्णु को उनके चतुर्भुज रूप में, हाथों में शंख , चक्र , पद्म और गदा लिए हुए, सर्वोच्च रूप मानते हुए उनकी पूजा करते हैं। इसके अतिरिक्त, उनका मानना है कि ईश्वर न तो समय से सीमित है और न ही आकार और रंग से सीमित है । वैष्णव परंपराओं का मानना है कि विष्णु असीमित हैं और फिर भी विशिष्ट रूप रखने में सक्षम हैं, इसी प्रकार भगवान की इस प्रकृति की ओर संकेत करने वाले अन्य नाम जैसे भुवनः,विधाता, अप्रमत्तः,, स्थानदः, श्रीविभावनः आदि शब्द उस नारायणी चेतना के अन्य नाम हैं । आचार्य शंकर की व्याख्या के अनुसार भवनः का अर्थ है ''वह जो सभी जीवों के आनंद के लिए उनके कर्मों का फल उत्पन्न करता है''। ब्रह्मसूत्र ''फलमतः उपपत्तेः'' जीवों के सभी कार्यों के फल देने वाले के रूप में भगवान के कार्य की बात करता है।[१२] विष्णुसहस्रनाम में कई नाम, विष्णु के हजारों नाम कर्म को नियंत्रित करने में भगवान की

शक्ति का संकेत देते हैं उदाहरण , धर्माध्यक्ष, का आचार्य शंकर द्वारा की व्याख्या में अर्थ है, ''वह जो प्राणियों के गुण (धर्म) और अवगुण (अधर्म) को प्रत्यक्ष रूप से देखता है ''। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि वैष्णव परंपरा में श्रीमद्भगवद-गीता और विष्णुसहस्रनाम को आध्यात्मिक रहस्य महत्वपूर्ण ग्रंथ माना गया है। गौड़ीय वैष्णववाद, वल्लभ संप्रदाय, निम्बार्क संप्रदाय और रामानंदियों के बीच, कृष्ण और राम के नामों के माध्यम से उस नारायणीय शक्ति का भजन पूजन श्रेष्ठ माना जाता है । पद्म पुराण में आगत श्लोक में कहा गया है कि विष्णु के एक हजार नामों का जाप करने का लाभ राम के एक नाम के जाप से प्राप्त किया जा सकता है वहीं दूसरी ओर ब्रह्मवैवर्त पुराण में विष्णु, कृष्ण और राम को एक समान माना गया है और कहा ग्या है कि इस सभी में लेशमात्र भी अंतर नहीं है। अत: कई वैष्णव समूह कृष्ण और राम को विष्णु के अवतार के रूप में मानते हैं जबकि अन्य कृष्ण को भगवान के रूप में मानते हैं। वास्तव में ये सभी नाम उस वैष्णवी चेतना के प्रदर्शक है। अत: श्री कृष्ण स्वयं ही श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं '' हे अर्जुन! कोई व्यक्ति हजारों नामों का पाठ करके प्रशंसा करने की इच्छा रख सकता है। लेकिन, मेरी ओर से, मैं एक शब्द मात्र से ही प्रसन्न हो सकता हूं। इसमें कोई संदेह नहीं है''।[१५] वर्तमान में विष्णु सहस्रनाम पर कई भाष्य उपलब्ध है जिनमें कतिपय प्रमुख भाष्यों के विषय और उनके द्वारा समर्थित मत के विषय में यहां बताना एक आवश्यकता बन जाती है। अद्वैत वेदांत के आदि गुरु शंकराचार्य ने आठवीं शताब्दी में सहस्रनाम पर भज गोविंदम् में कहा कि मनुष्य को गीता और विष्णुसहस्रनाम का जाप करना चाहिए जो स्वयं ही लक्ष्मी के स्वामी, एवं समस्त गुणों का आगार है । इसी प्रकार रामानुज के अनुयायी पराशर भट्ट ने 12वीं शताब्दी में इन्हीं संदर्भों में भगवत्गुणदर्पणम् नामक एक पुस्तक लिखी थी, जिसमें में विशिष्टाद्वैत परिप्रेक्ष्य से विष्णु के विभिन्न नामों का विवरण दिया गया था। रामानुजाचार्य के अनुयायी पराशर भट्ट ने भी माना है कि विष्णुसहस्रनाम साधक को सभी पापों से मुक्त कर देता है और वास्तव में अद्वितीय है। अद्वैत दर्शन के प्रवर्तक माधवाचार्य ने कहा कि सहस्रनाम महाभारत का वास्तविक सार है एवं इस के प्रत्येक पद के 100 अर्थ तो निश्चित ही हैं। स्वामीनारायण आस्था के संस्थापक स्वामीनारायण ने धर्मग्रंथ शिक्षापत्री के 118 श्लोक में कहा है कि धर्म साधना में निरत व्यक्ति को ''भागवत पुराण के 10वें सर्ग का पाठ नियमित रूप से करना चाहिए और इसके साथ ही पवित्र स्थान पर बैठ कर उसे ''विष्णुसहस्रनाम'' जैसे पवित्र स्तोत्र का पाठ भी उसे अवश्यमेव करना चाहिए। इस प्रकार के पाठ स्वयं में ही पूर्ण रूप में ईश्वर कृपा को आकृष्ट करने में श्रेष्ठ है।''

उसको उनके नामों का नित्य जप-पाठ अवश्य करना चाहिए । विष्णु सहस्त्रनाम का नित्य पाठ भगवान में भक्ति को बढ़ाने वाला है । विष्णुलोक तक पहुंचने के लिए यह अद्बितीय सीढ़ी है । भगवान शिव माता पार्वती को इन्हीं संदर्भों मे संबोधित करते हुए कहते है :

श्री राम राम रामेति रमे रामे मनोरमे
सहस्त्रनाम तत् तुल्यं राम नाम वरानने ॥

अर्थात् हे वरानने !मैं राम, राम, राम के पवित्र नाम का जप करता हूं और इस प्रकार लगातार इस सुंदर ध्वनि का आनंद लेता हूं। श्री राम का यह पवित्र नाम भगवान विष्णु के एक हजार पवित्र नामों के बराबर है।'' वही, दूसरी ओर कृष्ण अर्जुन को संबोधित करते हुए कहते हैं ।

यो मम नाम सहस्त्रेण स्तोतुम इच्छति पांडवः ।
सोहमेकेना श्लोकेन स्तुता एव न संशयः ।।

अर्थात् ''हे अर्जुन, कोई व्यक्ति हजारों नामों का पाठ करके स्तुति करने का इच्छुक है वह मेरी प्रसन्नता के लिये एक श्लोक मात्र से ही स्तुति कर सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है। अतः मनुष्य मात्र का सर्वश्रेष्ठ धर्म है वैष्णवी चेतना की ही उपासना की जाये।[११]

यद्यपि महाभारत में अनुशासनपर्व के 135वें अध्याय में श्लोक 14 से 120 तक विस्तृत है जिसे कुरुवंश के पौत्र और योद्धा पितामह भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को दिया गया है। जो कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में (बाणों से) अपनी मृत्यु शय्या पर थे परन्तु दूसरी ओर पद्म पुराण के 6/72 में इसका दूसरा स्वरूप हमें देखने को मिलता है जहां सहस्त्रनाम स्तोत्र को भगवान शिव माता पार्वती को बताते हुए इसको सबसे प्राचीन कहते हैं। वहीं स्कन्द-पुराण में यह सहस्त्रनाम का उल्लेख हमें देखने को मिलता है जहां ब्रह्माजी देवताओं को सुनाते हैं। गरुड़ पुराण अध्याय 15 में भी हमें यह स्तोत्र देखने को मिलता है परन्तु महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्मप्रोक्त 'विष्णु सहस्त्रनाम' विशेष प्रसिद्ध है। परन्तु विद्वानों ने इस स्तोत्र को अलग रूप में प्रकाशित किया है जिसके कारण यह स्वयं में एक स्वतन्त्र रूप में हमारे सामने आती है। ऐसा माना जाता है कि द्बापर के अंत में रचित यह अन्तिम श्रेष्ठतम भक्ति रचना है । विष्णु सहस्त्रनाम की महिमा बताते हुए श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज कहते हैं कि युधिष्ठिर ने महाभारत युद्ध के उपरान्त शरशैय्या पर लेटे पितामह भीष्म से प्रश्न किया-'परम धर्म क्या है और किसका जप करने से मनुष्य जन्म-मरण रूपी संसार-बंधन से मुक्त हो जाता है ?'

किमेकं दैवतं लोके किं वापयेकं
परायणा स्तुवंतः कम् कमर्चयन्तः प्राप्नुयुर्मानवः शुभः ।
को धर्मः सर्व धर्माणां भवतः परमो मतः ।
किं जपन् मुच्यते जंतुः जन्मसंसारबंधनात् ॥

यदि हम उपरोक्त श्लोक को देखें तो हम यह कह सकते हैं कि युधिष्ठिर पितामह भीष्म के पास धर्म के वास्तविक रूप को जानने के लिये उत्सुक्तावश पूछते हैं कि ''इस संसार में सबका

उसको उनके नामों का नित्य जप-पाठ अवश्य करना चाहिए । विष्णु सहस्त्रनाम का नित्य पाठ भगवान में भक्ति को बढ़ाने वाला है । विष्णुलोक तक पहुंचने के लिए यह अद्वितीय सीढ़ी है । भगवान शिव माता पार्वती को इन्हीं संदर्भों मे संबोधित करते हुए कहते है :

श्री राम राम रामेति रमे रामे मनोरमे
सहस्त्रनाम तत् तुल्यं राम नाम वरानने ॥

अर्थात् हे वरानने !मैं राम, राम, राम के पवित्र नाम का जप करता हूं और इस प्रकार लगातार इस सुंदर ध्वनि का आनंद लेता हूं। श्री राम का यह पवित्र नाम भगवान विष्णु के एक हजार पवित्र नामों के बराबर है।'' वही, दूसरी ओर कृष्ण अर्जुन को संबोधित करते हुए कहते हैं ।

यो मम नाम सहस्त्रेण स्तोतुम इच्छति पांडवः।
सोहमेकेना श्लोकेन स्तुता एव न संशयः।।

अर्थात् ''हे अर्जुन, कोई व्यक्ति हजारों नामों का पाठ करके स्तुति करने का इच्छुक है वह मेरी प्रसन्नता के लिये एक श्लोक मात्र से ही स्तुति कर सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है। अतः मनुष्य मात्र का सर्वश्रेष्ठ धर्म है वैष्णवी चेतना की ही उपासना की जाये।[११]

यद्यपि महाभारत में अनुशासनपर्व के 135वें अध्याय में श्लोक 14 से 120 तक विस्तृत है जिसे कुरुवंश के पौत्र और योद्धा पितामह भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को दिया गया है। जो कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में (बाणों से) अपनी मृत्यु शय्या पर थे परन्तु दूसरी ओर पद्म पुराण के 6/72 में इसका दूसरा स्वरूप हमें देखने को मिलता है जहां सहस्त्रनाम स्तोत्र को भगवान शिव माता पार्वती को बताते हुए इसको सबसे प्राचीन कहते हैं। वहीं स्कन्द-पुराण में यह सहस्त्रनाम का उल्लेख हमें देखने को मिलता है जहां ब्रह्माजी देवताओं को सुनाते हैं। गरुड़ पुराण अध्याय 15 में भी हमें यह स्तोत्र देखने को मिलता है परन्तु महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्मप्रोक्त 'विष्णु सहस्त्रनाम' विशेष प्रसिद्ध है। परन्तु विद्वानों ने इस स्तोत्र को अलग रूप में प्रकाशित किया है जिसके कारण यह स्वयं में एक स्वतन्त्र रूप में हमारे सामने आती है। ऐसा माना जाता है कि द्वापर के अंत में रचित यह अन्तिम श्रेष्ठतम भक्ति रचना है । विष्णु सहस्त्रनाम की महिमा बताते हुए श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज कहते हैं कि युधिष्ठिर ने महाभारत युद्ध के उपरान्त शरशैय्या पर लेटे पितामह भीष्म से प्रश्न किया-'परम धर्म क्या है और किसका जप करने से मनुष्य जन्म-मरण रूपी संसार-बंधन से मुक्त हो जाता है ?'

किमेकं दैवतं लोके किं वापयेकं
परायणा स्तुवंतः कम् कमर्चयन्तः प्राप्नुयुर्मानवः शुभः।
को धर्मः सर्व धर्माणां भवतः परमो मतः।
किं जपन् मुच्यते जंतुः जन्मसंसारबंधनात् ॥

यदि हम उपरोक्त श्लोक को देखें तो हम यह कह सकते हैं कि युधिष्ठिर पितामह भीष्म के पास धर्म के वास्तविक रूप को जानने के लिये उत्सुक्तावश पूछते हैं कि ''इस संसार में सबका

एकमात्र भाग्य विधाता (दैवत्) कौन है एवं किसकी स्तुति करने से मनुष्य मंगल को प्राप्त हो सकता है? किसकी पूजा करने से व्यक्ति जीवन में श्रेष्ठता की ओर अग्रसर हो सकता है? वे पुन: पूछते हैं कि सभी धर्मों में सबसे महानतम धर्म क्या है? किसका नाम जपने से जीव संसार के बंधनों से मुक्त हो सकता है? उस समय भीष्म पितामह जब बाणों की शय्या पर थे तो उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर को धर्म के विभिन्न रहस्यों पर उपदेश देते हुए वैष्णव सम्प्रदाय में श्रेष्ठतम स्तोत्र को सुनाया । भीष्म पितामह कहते हैं–'भगवान नारायण का दर्शन करते हुए शांति से वैष्णवी मत का पाठ एवं अनुष्ठान करना ही मनुष्य का परम धर्म है। भीष्म ने यह कहकर उत्तर दिया कि विष्णु सहस्त्रनाम का जाप युद्धिष्ठिर को सुनाया क्योंकि समस्त विश्व के स्वामी, सर्वोच्च एवं परम प्रकाश रूप एवं शाश्वत पुरुष एकमात्र वे ही हैं एवं वे ही ब्रह्मांड का सार हैं क्योंकि सभी चेतन और अचेतन पदार्थ की आधार भूमि वही है एवं समस्त जगत उसी विराट पुरुष में निवास करते हैं, और वह तत्त्व में सभी पदार्थों वह अनामय पद ही में श्रेष्टतम एवं एकमात्र उपास्य है। मनुष्य का श्रेष्ठतम धर्म यही है कि वह वैष्णवी धर्म का चिन्तन मनन एवं अनुपालन करे। वे मनुष्य कल्याण हेतु युधिष्ठिर को वैष्णव धर्म एवं चेतना का वास्तविक तत्त्व बताते हुए कहते हैं। वस्तुत: वैष्णवी विद्या एक धार्मिक दर्शन है जो हिंदू धर्म के अंतर्गत आता है। यह दर्शन विष्णु भगवान की उपासना पर आधारित होता है और इसे वैष्णव धर्म भी कहा जाता है। वैष्णवी विद्या का मूल अर्थ है 'ज्ञान' या 'विद्या' और इसे प्राप्त करने के लिए अनेक ग्रंथ और उपनिषद हैं। इनमें से श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत पुराण, महामना तिलक द्वारा रचित श्रीमदभगवदगीतारहस्य, गोपालतापिनी उपनिषद आदि उल्लेखनीय हैं। अत: सदाचारी मनुष्य को चाहिये कि वह सदा ही इन भक्ति ग्रन्थों का पारायण करे।[२२]

विष्णु सहस्त्रनाम के नित्य पाठ की महिमा

स्टीफन नैप की वेबसाइट पर वैष्णव विद्वान श्री एन. कृष्णमाचारी ने वैष्णव विद्वानों के सन्दर्भ से कहा है कि विष्णुसहस्त्रनाम की महानता के छह कारण हैं;

1) ''विष्णुसहस्त्रनाम वैष्णवी धर्म साधना का सार है;
2) नारद , आलवार जैसे महान संतों की भक्ति का आधार भूत ग्रन्थ है जिसका संत त्यागराज सहित संगीतकारों ने अपने भक्ति कार्यों में ''विष्णु के हजारों नामों'' का बार-बार उल्लेख किया है;
3) भीष्म विष्णुसहस्त्रनाम के जाप को सभी धर्मों में सबसे अच्छा और सबसे आसान मानते थे, या सभी बंधनों से मुक्ति पाने का श्रेष्ठतम साधन मानते है।
4) यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि यह स्तोत्र मनुष्य मात्र में कर्म जन्य सभी

पीडाओं से मुक्ति प्रदान करने में सक्षम है और मन की शांति का कारक है।

5) विष्णुसहस्रनाम गीता की शिक्षाओं के अनुरूप है।

6) ऐसी भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद ने 15 फ़रवरी 1970 को व्याख्यान देते हुए कहा था इस प्रकार हम पाते हैं कि सभी धर्मग्रन्थ परमपुरुष को लक्ष्य करते हैं। ऋग्वेद में मंत्र है ओम तद् विष्णुः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूर्यः ("देवता हमेशा विष्णु के उस सर्वोच्च निवास की ओर देख रहे हैं")। इसलिए, पूरी वैदिक प्रक्रिया भगवान विष्णु को समझने के लिए है, और कोई भी शास्त्र प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सर्वोच्च भगवान विष्णु की महिमा का जाप करता है।

प्रचलित मान्यताओं के अनुसार विष्णु सहस्त्रनाम का पाठ करने वाला मनुष्य कभी पराभव, दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि–

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ।।[२३]

अर्थात् जिसके हृदय कमल में नारायण स्वयं विद्यमान हो उसकी पराजय कहां हो सकती है। भगवान विष्णु ही अनेक रूप धारण करके त्रिलोकी में व्याप्त होकर सबको भोग रहे हैं; इसलिए जो मनुष्य श्रेय और सुख पाना चाहता है उसको उनके नामों का नित्य जप-पाठ अवश्य करना चाहिए । विष्णु सहस्त्रनाम का नित्य पाठ भगवान में भक्ति को बढ़ाने वाला है । विष्णुलोक तक पहुंचने के लिए यह अद्वितीय सीढ़ी है । अर्थात् जिसके हृदय में भगवान विष्णु का ध्यान और मुख में उनके नाम विराजमान हैं, उन्हीं को लाभ होता है, उन्हीं की विजय होती है; उनकी पराजय कैसे हो सकती है? वहीं दूसरी ओर हम फ़लश्रुति में देखें तो कहा गया है जो मनुष्य विष्णु सहस्त्रनाम का नित्य पाठ करता है या सुनता है, उसके साथ इस लोक या परलोक में कहीं पर भी कुछ अशुभ नहीं होता है । वह समस्त संकटों से पार हो जाता है । रोगातुर मनुष्य रोग से छूट जाता है, बन्धन में पड़ा हुआ पुरुष बन्धन से छूट जाता है, भयभीत का भय दूर हो जाता है, आपत्ति में पड़ा हुआ मनुष्य आपत्ति से छूट जाता है । मनुष्य को जन्म-मृत्यु, जरा, व्याधि का भय नहीं रहता है । मनुष्य आरोग्यवान, कान्तिमान, बलवान, रूपवान और सर्वगुणसंपन्न हो जाता है । विष्णु सहस्त्रनाम का नित्य शुद्ध मन से पाठ करने वाले व्यक्ति के क्रोध, लोभ, ईर्ष्या आदि दुर्गुण नष्ट हो जाते हैं तथा वह लक्ष्मी, कीर्ति, क्षमा, धैर्य, स्मृति और कीर्ति आदि सद्गुणों को प्राप्त करता है । साधक को धर्म, अर्थ, सुख या मोक्ष जिसकी भी इच्छा करता है, उसे प्राप्त कर लेता है । जो मनुष्य सूर्योदय के समय इसका पाठ करता है, उसके बल, आयु और लक्ष्मी प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं । अतः मनुष्य मात्र का वास्तविक धर्म उस नारायणी चेतना की सेवा करना ही वास्तविक धर्म का उत्तम स्वरूप है।

१. हरिभक्ति विलास: ११.३२१
२. https://trabslate.google.com/website?sl=en&tl=hi&hl=hi&client=srp&u=https://web.archive.org/web/20210226154606/http://www.hinduassociationhk.com/Mantras_Vishnu_Sahasranama.pdg
३. तपस्यानंद, स्वामी, श्री विष्णु सहस्रनाम, चेन्नई, श्री रामकृष्ण मठ, संस्कृत और अंग्रेजी, श्री शंकर भगवत्पाद की टिप्पणी के अंग्रेजी अनुवाद के साथ। पृ. ४
४. ऋग्वेद. १.१५६.३
५. पी. शंकरनारायण के विष्धु सहस्रनाम के अनुवाद की प्रस्तावना, भवन्स बुक यूनिवर्सिटी
६. तपस्यानद, स्वामी, श्री विष्णु सहस्रनाम, चेन्नई श्री रामकृष्ण मठ, संस्कृत और अंग्रेजी, श्री शंकर भगवत्पाद की टिप्पणी के अंग्रेजी अनुवाद के साथ पृ. १०
७. पी. शंकरनारायण के विष्णु सहस्रनाम के अनुवाद की प्रस्तावना, भवन्स बुक युनिवर्सिटी
८. वही ९. वही
१०. तपस्यानद, स्वामी, श्री विष्णु सहस्रनाम, चेन्नई श्री रामकृष्ण मठ, संस्कृत और अंग्रेजी, श्री शंकर भगवत्पाद की टिप्पणी के अंग्रेजी अनुवाद के साथ पृ. ९
११. शंकरनारायण. पी, (१९९६) श्री विष्णु सहस्रनाम स्तोत्रम्, मुंबई, भारतीय विद्या भवन, श्री शंकर भगवत्पाद की टिप्पणी के अंग्रेजी अनुवाद के साथ
१२. ब्रह्म सूत्र (३.२.२८)
१३. तपस्यानंद, स्वामी, श्री विष्णु सहस्रनाम, चेन्नई, श्रीरामकृष्ण मठ, संस्कृत और अंग्रेजी, श्री शंकर भगवत्पाद की टिप्पणी के अंग्रेजी अनुवाद के साथ पृ. ९
१४. शंकरनारायण. पी, (१९९६) श्री विष्णु सहस्रनाम स्तोत्रम्, मुंबई, भारतीय विद्या भवन, श्री शंकर भगवत्पाद की टिप्पणी के अंग्रेजी अनुवाद के साथ
१५. बृहद विष्णुसहस्रनामस्तोत्र, उत्तर-खंड, पद्म पुराण ७२.३३५
१६. भज गोविदं भज गोविदं, गोविदं भज मूढमते।
सम्प्राप्ते सन्निहिते काले, नहि न रक्षति दुकृङ्करणे।। आदि शंकराचार्य द्वारा रचित संस्कृत में एक लोकप्रिय हिंदू भक्ति कविता है।
१७. संस्कृत में महाभारत: पुस्तक १३, अध्याय १३५।
१८. स्कन्द पुराण ५/१/७४
१९. पद्य में बुद्ध पर। हिन्दू, चेन्नई भारत। १६ दिसंबर २००५, २१ जनवरी २००७ को मूल से संग्रहीत।
२०. शंकरनारायण. पी, (१९९६) श्री विष्णु सहस्रनाम स्तोत्रम्, मुंबई, भारतीय विद्या भवन, श्री शंकर भगवत्पाद की टिप्पणी के अंग्रेजी अनुवाद के साथ
२१. श्री विष्णुसहस्रनाम, श्री पराशर भट्टर के भाष्य के साथ, अंग्रेजी में अनुवाद के साथ। श्री विशिष्टाद्वैत प्रचारिणी सभा।
२२. शंकरनारायण. पी, (१९९६) श्री विष्णु सहस्रनाम स्तोत्रम्, मुंबई, भारतीय विद्या भवन, श्री शंकर भगवत्पाद की टिप्पणी के अंग्रेजी अनुवाद के साथ
२३. पद्य में बुद्ध पर। हिन्दू। चेन्नई भारत। १६ दिसंबर २००५, २१ जनवरी २००७ को मूल से संग्रहित

- वी. वी. बी. आई. एस एण्ड आई. एस. पंजाब विश्वविद्यालय पटल,
साधु आश्रम, होशियारपुर।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७३, सं.१-२
अप्रैल-मई ,२०२४

महाभारत के कार्तवीर्य उपाख्यान में भगवान् परशुराम

- शुभम् भारद्वाज

महाभारत भारतीय साहित्य का एक प्रमुख ग्रन्थ है। यह काव्य ग्रन्थ विश्व का सबसे बड़ा एवं अनुपम धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और दार्शनिक ग्रन्थ है। यह महाकाव्य प्राचीन भारत के इतिहास की अद्भुत गाथा है। परंपरागत रूप से, महाभारत की रचना का श्रेय वेदव्यास जी को दिया जाता है। इसमें कुल १८ पर्व हैं। इनमें वन पर्व का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसे आरण्यक पर्व के नाम से भी जाना जाता है। अठारह पर्वों में यह तृतीय पर्व है। वन पर्व के अन्तर्गत २२ उपपर्व और ३१४ अध्याय हैं। वन पर्व में पाण्डवों द्वारा वन में की गई बारह साल की यात्रा का वर्णन है। जिसमें वह जीवन में कई रहस्यों को समझते हैं और चरित्र निर्माण करते हैं। वन पर्व में सद्गुणों और नैतिकता पर अनेक उपाख्यान हैं। इनमें ही एक महत्वपूर्ण उपाख्यान है- भगवान् परशुराम जी का चरित्र तथा उनके द्वारा कार्तवीर्य अर्जुन के वध का प्रसंग१ ।

उक्त श्लोक में महर्षि परशुराम के साथ-साथ कार्तवीर्य के चरित्र को भी देव सम्मत बताया गया है। सामान्य तौर पर जन श्रुति यह है कि कार्तवीर्य उद्दण्ड राजा था जिसकी उद्दण्डता का परशुराम को समुचित दण्ड देना पड़ा था। युधिष्ठिर ने अपने भाईयों सहित एक पर्वत पर एक रात निवास किया तथा तपस्वी मुनियों का सत्कार किया। लोमश जी ने युधिष्ठिर से उन सभी तपस्वी महात्माओं का परिचय कराया। उनमें भृगु, अङ्गिरा, वसिष्ठ तथा कश्यप गोत्र के अनेक संत महात्मा थे। उन सब से मिलकर राजर्षि युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और परशुराम जी के सेवक वीरवर अकृतव्रण से पूछा।[२]

भगवान परशुराम जी इन तपस्वी महात्माओं को कब दर्शन देगें? उसी निमित्त से मैं भी उन भगवान भार्गव का दर्शन करना चाहता हूँ। अकृतव्रण ने कहा राजन् ! आत्मज्ञानी परशुराम जी को पहले ही यह ज्ञात हो गया था कि आप आ रहें हैं। आप से स्नेह के कारण, वह शीघ्र ही आकर आपको दर्शन देंगे। युधिष्ठिर ने पूछा- मुने! आप महाबली परशुराम जी के अनुगत भक्त हैं। उन्होंने पहले जो जो कार्य कियें हैं, उन सबको आपने प्रत्यक्ष देख है। अतः हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि परशुराम जी ने किस प्रकार और किस कारण से समस्त क्षत्रियों को युद्ध में पराजित किया था।[३] अकृतव्रण ने कहा[४]-

हे भरतकुलभूषण! नृपश्रेष्ठ! युधिष्ठिर!

भृगुवंशी परशुराम जी की कथा बहुत बड़ी और उततम है, मैं आपसे उस का वर्णन करूँगा।

हे भरत! जमदग्निकुमार परशुराम जी तथा हैहयराज कार्तवीर्य का चरित्र देवताओं के तुल्य है। पाण्डुनन्दन! परशुराम जी ने अर्जुन नाम से प्रसिद्ध जिस हैहयराज कार्तवीर्य का वध किया था। उसके एक हजार भुजाएँ थीं।[५]

हे पृथ्वीपते! श्री दत्तात्रेय जी की कृपा से उसे एक सोने का विमान मिला था और भूतल के सभी प्राणियों पर उसका प्रभुत्व था। महात्मना कार्तवीर्य के रथ की गति को कोई भी रोक नहीं सकता था। उस रथ और वर के प्रभाव से शक्तिसम्पन्न हुआ कार्तवीर्य अर्जुन सब ओर घूमकर सदा देवताओं, पक्षों तथा ऋषियों को रोंदता फिरता था और सम्पूर्ण प्राणियों को भी सब प्रकार से पीड़ा देता था।[६]

कर्तवीर्य का ऐसा अत्याचार देख देवता तथा महान् व्रत का पालन करने वाले ऋषि मिलकर दैत्यों का विनाश करने वाले सत्यपराक्रमी देवाधिदेव भगवान विष्णु के पास जा कर इस प्रकार बोले[७]–

हे भगवान! आप सभी प्राणियों की रक्षा के लिए कार्तवीर्य अर्जुन का वध कीजिए। एक दिन शक्तिशाली हैहयराज ने दिव्य विमान द्वारा शची के साथ क्रीड़ा करते हुए देवराज इन्द्र पर आक्रमण किया। तब भगवान विष्णु ने कार्तवीर्य अर्जुन का नाश करने के सम्बन्ध में इन्द्र के साथ विचार विनिमय किया। समस्त प्राणियों के हित के लिए जो कार्य करना आवश्यक था, उसे देवेन्द्र ने बताया। तत्पश्चात् विश्व वन्दित भगवान विष्णु ने वह सब कार्य करने की प्रतिज्ञा करके बदरीतीर्थ की यात्रा की, जहां उनका अपना ही विस्तृत आश्रम था।[८]

इसी समय इस भूतल पर कान्यकुब्ज देश में एक महाबली महाराज शासन करते थे, जो गधि नाम से विख्यात थे। वह राजधानी छोड़कर वन में गये और वहीं रहने लगे। उनके वनवास काल में ही एक कन्या उत्पन्न हुई, जो अप्सरा के समान सुन्दर थी। विवाह के योग्य होने पर भृगुपुत्र ऋचीक मुनि ने उसका वरण किया। उस समय राजा गधि ने कठोर व्रत का पालन करने वाले ब्रह्मर्षि ऋचीक से अपने कुल के पूर्वजों द्वारा बनाए नियम के अनुसार अपनी कन्या के लिए एक सहस्र वेगशाली अश्व शुल्क रूप में लिए, जिनका शरीर का रंग तो सफेद और पीला मिला हुआ सा और कान एक ओर से काले रंग के थे। ऋचीक मुनि ने ये घोडे वरूण देव से लाकर दिए थे।[९]

जहाँ वे श्यामकर्ण घोड़े प्रकट हुए थे, वह स्थान अश्वतीर्थ नाम से विख्यात हुआ।[१०]

विवाह करने के पश्चात् पत्नी सहित ऋचीक को देखने के लिए महर्षि भृगु उनके आश्रम पर आये और अपने श्रेष्ठ पुत्र को विवाहित देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन दोनों पति पत्नी ने आसन पर

विराजमान देववृन्दवन्दित गुरु (पिता एवं श्वसुर) का पूजन किया। भगवान भृगु ने प्रसन्न हो पुत्र वधु से वर माँगने के लिए कहा। सत्यवती ने श्वसुर को अपनी और अपनी माता के लिए पुत्र प्राप्ति का उद्देश्य रखकर सेवा भाव द्वारा उन्हें प्रसन्न किया। तब भृगु जी ने उस पर कृपा दृष्टि की। भृगु जी बोले–बहू ! ऋतुकाल में स्नान करने के पश्चात् तुम और तुम्हारी माता पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से भिन्न वृक्षों का अलिङ्गन करो। भद्रे ! मैंने विराट पुरुष का चिन्तन करके तुम्हारे और तुम्हारी माता के लिए यत्नपूर्वक दो चरु तैया किए हैं। तुम दोनों प्रयत्न पूर्वक अपने अपने चरू का भक्षण करना ऐसा कहकर भृगु जी अन्तर्ध्यान हो गए।

इधर सत्यवती और उसकी माता ने वृक्षों के आलिङ्गन और चरु भक्षण में उलटफेर कर दिया। तदन्तर बहुत दिन बीतने पर भगवान् भृगु अपनी दिव्य ज्ञान शक्ति से सब बातें जानकर पुनः वहाँ आये। उस समय महातेजस्वी भृगु अपनी पुत्रवधु सत्यवती से बोले[११]–

भद्रे तुमने जो चरुभक्षण और वृक्षों का आलिङ्गन किया है उसमें उलटफेर करके तुम्हारी माता ने तुम्हे ठग लिया। इस भूल के कारण तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण होकर भी क्षत्रियोचित आचार विचार वाला होगा और तुम्हारी माता का पुत्र क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मणोचित आचार विचार का पालन करने वाला होगा। तब सत्यवती ने बारबार प्रार्थना करके पुनः अपने श्वसुर को प्रसन्न किया और कहा – भगवान् ! मेरा पुत्र ऐसा न हो। भले ही, पौत्र क्षत्रिय स्वभाव का हो जाए। तब भृगु जी ने एवमस्तु कह कर अपनी पुत्र वधु का अभिनन्दन किया।[१२] समय आने पर सत्यवती ने जमदग्नि नामक पुत्र को जन्म दिया। भार्गवनन्दन जमदग्नि तेज और ओज दोनों से सम्पन्न थे। बड़े होने पर महातेजस्वी जमदग्नि मुनि वेदाध्ययन द्वारा बहुत से ऋषिओं से आगे बढ़ गए। सूर्य के समान तेजस्वी जमदग्नि की बुद्धि में सम्पूर्ण धनुर्वेद और चारों प्रकार के अस्त्र स्वत प्रस्फुरित हो गए।[१३]

जमदग्नि ने वेदाध्ययन में तत्पर होकर तपस्या प्रारम्भ की तदनन्तर शौच संतोषादि नियमों का पालन करते हुए उन्होंने सम्पूर्ण देवताओं को अपने वश में कर लिया। फिर राजा प्रसेनजित के पास जाकर जमदग्नि मुनि ने उनकी पुत्री रेणुका के लिए याचना की और राजा ने मुनि को अपनी कन्या ब्याह दी। भृगुकुल नन्दन अपनी पत्नी रेणुका के साथ आश्रम पर रहते हुए तपस्या करने लगे। रेणुका सदा सब प्रकार से पति के अनुकूल चलने वाली स्त्री थी। उसके गर्भ से क्रमशः चार पुत्र हुए, फिर पाँचवे पुत्र परशुराम जी का जन्म हुआ। अवस्था की दृष्टि से भाईयों में छोटे होने पर भी वे गुणों में उन सबसे बढ़े चढ़े थे। एक दिन जब सब पुत्र फल लाने के लिए वन में चले गये, तब नियमपूर्वक उत्तम व्रत का पालन करने वाली प्रतिदिन की भाँति नदी में स्नान करके लौटने लगी, उस समय अकस्मात उसकी दृष्टि मार्तिकावत देश

के राज चित्ररथ पर पड़ी, जो कमलों की माला धारण करके अपनी पत्नी के साथ जल मं क्रीड़ा कर रहा था। उस समृद्धशाली नरेश को देखकर रेणुका ने उसकी इच्छा की तथा इस मानसिक विकार से द्रवित हुई रेणुका जल में बेहोश सी हो गई। फिर त्रस्त होकर उसने आश्रम के भीतर प्रवेश किया। परन्तु पतिदेव उसकी सब बातें जान गए।[१४]

उसे धैर्य से च्युत और ब्रह्मतेज से वञ्चित हुई देख उन महातेजस्वी शक्तिशाली महर्षि ने धिक्कारपूर्ण वचनों द्वारा उसकी निन्दा की तथा उस समय ही जमदग्नि के ज्येष्ठ पुत्र रूमण्वान् वहां आ गये। फिर क्रमश: सुषेण, वसु और विश्वावसु भी आ पहुँचे भगवान् जमदग्नि ने बारी-बारी से उन सभी पुत्रों को यह आज्ञा दी कि तुम अपनी माता का वध कर डालो, परंतु मातृस्नेह उमड़ आने से वे कुछ भी बोल न सके तथा बेहोश से खड़े रहे। तब महर्षि ने कुपित हो उन सभी पुत्रों को शाप दे दिया। शापग्रस्त होने पर वे अपनी चेतना (विचार-शक्ति) खो बैठे और तुरंत मृग एवं पक्षियों के समान जड़-बुद्धि हो गये। तदनन्तर शत्रुपक्ष के वीरों का संहार करने वाले परशुराम जी सबसे पीछे आश्रम पर आये। उस समय महातपस्वी महाबाहु जमदग्नि ने उनसे कहा बेटा अपनी इस पापिनी माता को अभी मार डालो और इसके लिए मन में किसी प्रकार का खेद मत करो, तब परशुराम जी ने फरसा लेकर उसी क्षण माता का मस्तक काट डाला। इससे महात्मा जमदग्नि का कोप सहसा शान्त हो गया और उन्होंने परशुराम जी से कहा[१५]-

तात! तुमने मेरे कहने से वह कार्य किया है, जिसे करना दूसरों के लिए बहुत कठिन है। तुम धर्म के ज्ञाता हो। तुम्हारे मन में जो जो कामनाएँ हों, उन सब को माँग लो। तब परशुराम जी ने कहा[१६]-

पिता जी! मेरी माता जीवित हो उठे, उन्हें मेरे द्वारा मारे जाने की बात याद न रहे, मानस पाप उनका स्पर्श न कर सकें, मेरे चारों भाई स्वस्थ हो जाएँ, युद्ध में मेरा सामना करने वाला कोई न हो और मैं बड़ी आयु को प्राप्त करूँ। महातपस्वी जमदग्नि ने वरदान देकर उसकी वे सभी कामनाएँ पूर्ण कर दीं। अकृतव्रण कहते हैं- युधिष्ठिर! एक दिन इसी तरह उनके सब पुत्र बाहर गयें हुए थे। उसी समय अनूपदेश का वीर राजा कार्तवीर्य अर्जुन उधर आया। आश्रम में आने पर ऋषि पत्नी रेणुका ने उसका यथोचित अतिष्य सत्कार किया। कार्तवीर्य अर्जुन युद्ध के मद से उन्मत्त हो रहा था। उसने उस सत्कार को ग्रहण न कर उसके विपरीत मुनि के आश्रम को तहस-नहस कर दिया और वहाँ डकराती हुई होमधेनु के वछड़े को बलपूर्वक हर लिया और आश्रम के बड़े-बड़े वृक्षों को भी तोड डाला। जब परशुराम जी आश्रम आए, तब स्वयं जमदग्नि ने उनसे सारी बात कह सुनाई। पुन: पुन: बोलती हुई होम की धेनु पर उनकी दृष्टि

पड़ी। इससे वे अत्यन्त कुपित हो उठे और काल के वशीभूत हुए कार्तवीर्य अर्जुन पर धावा बोल दिया। शत्रुवीरों का संहार करने वाले भृगुनन्दन परशुराम जी ने अपना सुन्दर धनुष ले युद्ध में महान् पराक्रम दिखाया और तीक्ष्ण बाणों द्वारा उसकी परिधसदृश सहस्र भुजाओं को काट डाला। इस प्रकार परशुराम जी से परास्त हो अर्जुन काल के गाल में चला गया। महाभारत के इस ऊपर वर्णित कार्तवीर्य उपाख्यान में हमें यह शिक्षा मिलती हे कि ऋषि-महषियों को भी कार्तवीर्य सरीखे महा उद्दण्ड राजा को दण्ड देने के लिए शस्त्र उठाना पड़ा। यद्यपि ऋषि महर्षि तपस्वी होते हैं। उनका स्वभाव शान्त होता है, तो इस पर सामान्य जन के मन में यह शंका उठती है कि ऋषि महर्षि तो बड़े से बड़े अपराध को क्षमा कर देते हैं। तो परशुराम जी ने कार्तवीर्य को क्षमा क्यों नहीं किया। इस पर हमारा कहना है कि क्षमा का यहाँ प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि राष्ट्र कवि रामधारी सिंह दिनकर ने कहा भी है-

क्षमा शोभती उस भुजङ्ग को जिसके पास गरल हो। उसको क्या जो दन्तहीन विष रहित विनीत सरल हो ।।

---

१. रामस्य जामदग्न्यस्य चरितं देव सम्मितम्।
हैहयाधि पतेश्चैव कार्तवीर्यस्य भारत।।

२. कदा तु रामो भगवस्तापसान् दर्शयिष्यति।
तेनैवाहं प्रसंगेन द्रष्टुमिच्छामि भार्गवम्।। (वनपर्व - ११५.४)

३. स भवान् कथयत्वद्य यथा रामेण निर्जितः।
आहवे क्षत्रियाः सर्वे केन च हेतुना।। (वनपर्व - ११५.८)

४. हन्त ते कथिष्यामि महदाख्यानमुत्तमम्।
भृगूणां राजशार्दूल वंशे जातस्य भारतम्।। (वनपर्व - ११५.९)

५. दत्तात्रेयप्रसादेन विमानं काञ्चनं तथा।
ऐश्वर्यं सर्वभूतेषु पृथ्व्यिां पृथिवीपते।। (वनपर्व - ११५.१२)

६. ततो देवा समेत्याहुर्ऋषयश्च महाव्रताः।
देवदेवं सुरारिघ्नं विष्णुं सत्यपराक्रमम्।। (वनपर्व - ११५.१५)

७. भगवन् भूतरक्षार्थमर्जुनं जहि वै प्रभो।। (वनपर्व - ११५.१६)

८. जगाम बदरीं रम्यां स्वमेवाश्रममण्डलम्।
एतस्मिन्नेव काले तु पृथिव्यां पृथ्वीपतिः।। (वनपर्व - ११५.१९)
कान्यकुब्जे महानासीत् पार्थिवः सुमहाबलः।
गाधीति विश्रुतो लोके वनवासं जगाम ह।। (वनपर्व - ११५.२०)

९. एकतः श्यामकर्णानां पाण्डुराणां तरस्विनाम्।

सहस्र वाजिनां शुल्कमिति विद्धि द्विजोत्तम।। (वनपर्व - ११५.२३)
सहस्र वाजिनामेकं शुल्कार्थे मे प्रदीयताम्।
तस्मै प्रादात् सहस्रं वै वाजिनां वरुणस्तदा।।

१०. तदश्वतीर्थे विख्यातमुत्थिता यत्र ते हयाः।
गङ्गायां कान्यकुब्जे वै ददौ सत्यवती तदा।।

११. विपरीतेन ते सुभ्रूर्मात्रा चैवासि वञ्चिता।
ब्रह्मणः क्षत्रवृतिर्वै तव पुत्रो भविष्यति।। (वनपर्व - ११५.४०)
क्षत्रियो ब्राह्मणाचारो मातुस्तव सुतो महान्।
भविष्यति महावीर्यः साधूनां मार्गमास्थितः।। (वनपर्व - ११५.४१)

१२. एवमास्त्वि सा तेन पाण्डव प्रतिनन्दिता। (वनपर्व - ११५.४३)

१३. तेजसा वर्चसा युक्तं भार्गवनन्दनम्।
स वर्धमानस्तेजस्वी वेदस्याध्ययनेन च।। (वनपर्व - ११५.४४)
त तुक्रत्सो धनुर्वेदः प्रत्यभाद् भरतर्षभ।
चतुर्विधानि चास्त्राणि भास्करोपमवर्चसम्।। (वनपर्व - ११५.४५)

१४. व्यभिचाराच्च तस्मात् सा किन्नाम्भसि विचेतना।
प्रविवेशाश्रमं त्रस्ता तां वै भर्तान्वबुध्यत।। (वनपर्व - ११५.८)

१५. मामेदं वचनात् तात कृतं ते कर्म दुष्करम्।
वृणीष्व कामान् धर्मज्ञ यावतो वाञ्छसे हृदा।। (वनपर्व - ११६.१६)

१६. स वव्रे मातुरुत्थानमस्मृतिं च वधस्य वै।
पापेन तेन चास्पर्शे भ्रातृणां प्रकृति स्तथा।।

– शोधछात्र, वी. वी. बी. आई. एस एण्ड आई. एस.
पंजाब विश्वविद्यालय पटल, साधु आश्रम, होशियारपुर।

पुस्तक-समीक्षा

पुस्तक का नाम - वेद-पथ

डॉ. सत्यदेव सिंह,

प्रकाशक - साहित्य केन्द्र प्रकाशन, 28/2, रमेश पार्क, गुरुद्वारा रोड़, लक्ष्मी नगर, दिल्ली - 110 092,

संस्करण - प्रथम (पृ. 278)

मूल्य - 695/- रुपये

प्राक्कथन में ही लेखक 'वेद-पथ' ग्रन्थ लिखने का प्रयोजन, **मा प्र गाम पथो वयम्** (ऋ. वे. 10.57.1) अर्थात् हम अपने सन्मार्ग से विचलित न हों। इस ऋचा द्वारा स्पष्ट कर देते हैं कि वैदिक पथानुगामी कभी भी स्वार्थ के वशीभूत न होकर सामाजिक उन्नति के पथ पर चलता जाय तो सम्पूर्ण विश्व का कल्याण सम्भव है। इसी उद्देश्य से 'वेद-पथ' ग्रन्थ की रचना की गई है।

ग्रन्थ में कुल 31 विषयों पर वैदिक आधार लेकर चर्चा की गई हैं जिन्हें 'परमात्मा,जीवात्मा, प्राण, मुक्ति, नरक और जागरण' जैसे खण्डों में विभक्त किया गया। तत्पश्चात् वैदिक साक्ष्य के आधार पर सटीक विवरण प्रस्तुत करने का एक श्रेष्ठ प्रयास किया गया है। प्रत्येक जीव विशेषत: मनुष्य जब कोई विचार उसके अन्त:करण में उद्भावित होता है तो उसे ध्वनि के माध्यम से अथवा संकेत द्वारा प्रकट करता है। और, यही ध्वनि (शब्दरूप में) अथवा संकेत भविष्य में होने वाले बोध के प्रति मूल कारण होते हैं। यही कारण है कि प्राचीन ऋषि-मुनियों से लेकर वर्तमान तक जितनी भी आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक गवेषणयें हुयी हैं उन सभी का बीज 'शब्द' अथवा 'संकेत' लिपि आदि के रूप में हम तक पहुँचा है। 'ईशावस्यमिदं सर्वम्' इत्यादि श्रुतियों तथा स्मृति-पुराणोक ज्ञान उपर्युक्त दोनों साधनों से प्रवाह के रूप में निरन्तर आज के समाज तक पहुँच रहा है।

निष्कर्ष यही है कि लेखक महोदय वैदिक श्रुतियों से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण वैदिक पद्धति से आधुनिक समाज चल सके। इसी संकल्प को लेकर इस ग्रन्थ के प्रणयन में उद्यत हुये हैं। ग्रन्थ न केवल प्रबुद्ध समाज के लिए उपयोगी है अपितु जन सामान्य के लिए भी उतना ही उपयोगी है। स्वस्थ समाज की संरचना में यह ग्रन्थ अनेक साधनों में से एक साधन हो सकता है- ऐसा मेरा मानना है।

- प्रो. प्रेम लाल शर्मा, सह-सम्पादक, विश्व ज्योति,
वी. वी. आर. आई, साधु आश्रम, होशियारपुर।

पुस्तक–समीक्षा

पुस्तक का नाम	-	**सार संचय**
संकलन एवं संपादक	-	**कृष्णचन्द्र टवाणी**
प्रकाशक	-	**ज्ञानमंदिर, सिटी रोड़, मदनगंज-किशनगढ़ (राज.) 305601, मोबाइल – 9252988221**
पृष्ठ संख्या	-	**96**
मूल्य	-	**75/– रुपये**

ज्ञानमंदिर एक विशिष्ट संस्थान है जो अपनी पत्रिका 'अध्यात्म अमृत' द्वारा अध्यात्म विषयक रसवर्षण करती रहती है, साथ ही समय-समय पर भक्ति व ज्ञानवर्धक पुस्तकें भी प्रकाशित करती रहती हैं। इसी श्रृंखला में है प्रस्तुत कृति 'सार संचय' जिसमें विविध धार्मिक ग्रंथों से चयन कर संकलित किये गये हैं। सार्थक जीवन के सूत्र ठीक उसी प्रकार जैसे तितलियाँ व भ्रमर लेते हैं विभिन्न पुष्पों से परागकण। वर्तमान की युवा अपेक्षाकृत कम परिपक्व सी लगती है। उसका मार्ग दर्शन कर सही दिशा बोध कराना ही इस प्रकाशन का प्रमुख ध्येय है।

प्रत्येक मानव अपनी दिनचर्या में विभिन्न प्रकार के कर्म करता है। इस दिनचर्या को किस प्रकार सार्थक रूप देकर सदैव स्वस्थ व निरोग रहा जाये इसकी एक-एक क्रिया की इतनी विशद जानकारी दी गई है जो किसी एक स्वास्थ्य परक पुस्तक में शायद ही मिले। विवाह संस्कार, जन्मोत्सव, मृत्यु से पूर्व एवं पश्चात् की क्रियाओं, श्राद्ध सम्बन्धी विभिन्न विधियाँ अल्प लोगों को ही ज्ञात हैं। इन्हें सविस्तार समझाया गया है। अध्यात्म विषयक खण्ड में भी जीवात्मा व परमात्मा से समन्धित सूक्ष्म विविध विषयों की विस्तृत जानकारियाँ है जिन्हें हम बिना गूढ़ भावार्थ जाने अपनाते रहते हैं यथा ॐ का महत्त्व, स्वास्तिक का महत्त्व, प्रणाम व प्रार्थना का तात्पर्य, माता-पिता व सद्गुरु की महिमा, समर्पण, संस्कार, साधना, धर्म, यज्ञ, मोक्ष, उपवास, पाप व पुण्य, आत्मा, मन, स्वाध्याय, क्रोध आदि। कुछ आध्यात्मिक गीत भी समापन के पूर्व संकलित हैं।

सोशल मीडिया, मोबाइल आदि आज के जीवन की सर्वाधिक काम में आने वाली आवश्यकता बन गई है परन्तु इनके दुरुपयोग से सिरदर्द, बहरापन, वी.पी., तनाव, स्मरण शक्तियों के ह्रास आदि की समस्यायें हो गई है। कृतिकार ने इन पर विचार कर इनके सदुपयोग के मार्ग दर्शाये हैं। कहावत है कि धन गया तो कुछ नहीं, स्वास्थ्य गया तो कुछ गया, पर चरित्र गया तो सब कुछ गया। इसी तथ्य को

स्वीकारते हुए चरित्र निर्माण को विशेष महत्त्व दिया गया है। उसे कैसे संवारे इस विषय पर विशद वर्णन है। विवाह महोत्सवों में आज जो विकृतियाँ आ गई है वे अवांछित हैं, इनसे बचने की सार्थक सलाह दी गई है। एक अन्य उपयोगी सूत्र है खाने को आधा करो, पानी को करो दुगुना, व्यायाम को तिगुना करो और हँसने को करो चौगुना। चिकित्सकीय परामर्श है कि 'लाफटर थेरेपी' अनेक बीमारियों की नि:शुल्क औषधि है। आज वरिष्ठ नागरिकों की समस्या विकट हो चली है। समय-समय पर इस विषयक चर्चा पढ़ने, सुनने को आती है। इस पर अनेक सुझाव भी दिये गये हैं। ''इसको भुनभुनाते नहीं, अपितु गुनगुनाते जिएँ, मुरझाए हुए नहीं अपितु मुस्कराते हुए जिएँ।'' (पृष्ठ संख्या - ३७)

अध्यात्म की चर्चा तो बहुत है पर यह वास्तव में क्या है? यह बताया गया है- अध्यात्म सृष्टि का सर्वोच्च विज्ञान है, अध्यात्म माने ईश्वर को जानना यानि स्वयं अपने को जानना कि हम क्या हैं? प्रधान विषय है, जीव, जगत् और जगतपति के रहस्यों को जानना। इस प्रकार इस उपयोगी पुस्तक से पाठक अपने जीवन में सुधार लाकर भावी जीवन को ऊँचाइयों की ओर ले जाकर सार्थक बना सकते हैं। उचित मूल्य पर उपलब्ध यह पुस्तक जीवन को सही मार्ग पर ले जाने हेतु सक्षम है।

- समीक्षक एस. एम. गोयल,
५२/४, अग्रसेन नगर, अजमेर (राज.) 305001।

संस्थान-समाचार

दान-

Mr. Vijay Kumar Sharma, U.K.	10340/-
Mrs. Nimmi Dhir, New Delhi.	11000/-
Dayal Singh Library Trust Society, New Delhi.	2000/-
M/s Kailash Chander Varinder Kumar, Hoshiarpur.	5100/-
Sh. Surinder Paul Pathak, Bajwara, Hoshiarpur.	2100/-
Sh. Sunil Dutt, Panipat.	5100/-
Dr. (Mrs.)Vasundra Rehani, Chandigarh.	5000/-
Lala Jagat Narian Shanti Devi Charitable Trust, Jalandhar.	1100/-
Smt. Usha Devi, Hoshiarpur.	200000/-
Principal Hans Raj Mahila Mahavidyala, Jalandhar.	5000/-
Prin. (Smt.) Saroj Bala, Kapurthala.	11000/-
Dr. Girish Chander Ohja, Hoshiarpur.	11000/-

दान-

Dr. M. R. Lamba, Dharampur, Solan.	5000/-
Sh. Ashok Kumar Khar, Delhi.	3100/-
Dr. A. K. Datta, Delhi.	5000/-
Sh. Chandra Bhushan Girotra, Mumbai	11000/-
Shri Arun Sethi, New Delhi.	10000/-
Prof. D. D. Bhatti, Malerkotle.	5000/-
Shri Ashish Bhatia, New Delhi.	10000/-
Dr. Ajay Kumar Sharma, & Mrs. Latika Sharma U.S.A.	25000/-
Dr. Yoginderpal Salota, Delhi.	1000/-
Dr. Pardeep Kumar, Patiala.	15000/-
Mr. Gurtrishan Singh, Canada.	20000/-

हवन-यज्ञ - विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से किया जाता है।

शोक समाचार-

संस्थान के परम हितैषी श्री रामभज दत्त का देहान्त

संस्थान के परम हितैषी श्री रामभज दत्त का दिनांक 27-2-2024 को देहान्त हो गया। आप काफी लम्बे समय से संस्थान के साथ जुड़े हुये थे और हर वर्ष संस्थान के लिए दान भेजा करते थे। आप एक बहुत ही नेक दिल इन्सान थे। आप अपने पीछे भरा-पूरा परिवार छोड़ गये हैं। इस शोक के अवसर पर संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की दु:खी परिवार के साथ हार्दिक समवेदना है। प्रभु से प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें और दु:खी परिवार को इस दु:ख को सहने की शक्ति दे।

श्री सतीश कुमार रिहानी का देहान्त

संस्थान के परम हितैषी डॉ. श्रवण कुमार रिहानी के छोटे भाई श्री सतीश कुमार रिहानी (भूतपूर्व लाईब्रेरयीन) का दिनांक 28-3-2024 को होशियारपुर में देहान्त होगा। आप बड़े ही मेहनती और हंसमुख व्यक्ति थे। इस शोक के अवसर पर संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की दु:खी परिवार के साथ हार्दिक समवेदना है। प्रभु से प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें और दु:खी परिवार को इस दु:ख को सहने की शक्ति दे।

ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

संचालक,
वी.वी.आर.आई,
साधु आश्रम, होशियारपुर

विश्वज्योति

महाभारत के आख्यान

के
पहले भाग
में

वेदादि-धार्मिक ग्रन्थों से स्वाध्याय, मनन तथा जीवन में अपनाने योग्य सद्वचनों को संगृहीत किया गया है।

इस प्रकार के वचनों को निरन्तर पढ़ने, मनन करने एवं तदनुरूप जीवन को चलाने से पाठक अपने जीवन में शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

दानी-सज्जनों की नाम-सूची

	पृष्ठ
श्रीमती ऊषा देवी, होश्यारपुर।	९३
Dr. Ajay Sharma & Mrs. Latika Sharma, USA	९४
श्रीमती इन्दुशर्मा, इंग्लैड।	९५
Sh. Chander Bhushan C. Girotra, Mumbai	९६
Mr. Harish K. Bharti, USA	९७
श्रीमती कमला डडवाल, होशियारपुर।	९८
मेजर जनरल ओ.पी. परमार, होशियारपुर।	९९
Pharma Crafts (India), Hoshiarpur	१००
श्री अनुज सूद, होशियारपुर	१०१
श्री भरत सूद, होशियारपुर	१०२
सर्वश्री चरणदास मल्हन चेरिटेबल ट्रस्ट, होशियारपुर	१०३
योग साधन आश्रम संरक्षक समिति होशियारपुर	१०४
श्री ए. के. गुप्ता, धर्मशाला।	१०५

	पृष्ठ
प्रो. गिरीश चन्द्र ओझा, होशियारपुर	१०६
डॉ. ए. के. दत्ता, दिल्ली।	१०७
डॉ. शिव कुमार वर्मा, होशियारपुर।	१०८
सर्वश्री अशोक खेर एण्ड कम्पनी दिल्ली।	१०९
डॉ. एन. के. उबराय, नई दिल्ली।	११०
श्री देवव्रत शर्मा, जालन्धर।	१११
श्री प्रशांत शर्मा, जालन्धर।	११२
Smt. Sneh Lata Jain Hoshiarpur	११३
डॉ. (श्रीमती) वसुन्धरा रिहानी, चण्डीगढ़	११४
श्री वीरेन्द्र कुमार सूद, होशियारपुर।	११५
श्रीमती निम्मी धीर, नई दिल्ली।	११६
डॉ. अश्वनी कुमार जुनेजा होशियारपुर।	११७
Dr. D. V. Salwan, Hoshiarpur	११८

	पृष्ठ
Wg. Cdr. Lakshminarayanan S. R. Tamilnadu	१२०
डॉ. अशोक सूद, होशियारपुर।	१२१
श्री विश्वामित्र भल्ला, चण्डीगढ़ ।	१२२
श्रीमती सुशील कौशल, दसूहा होशियारपुर	१२३
डॉ. भागेन्द्र सिंह ठाकुर जोगेन्द्र नगर, मण्डी।	१२४
श्री चन्द्रमोहन अरोडा, होशियारपुर	१२५
डॉ. एस.एल. चावला, जालन्धर	१२६
डॉ. बी.के. कपिला, होशियारपुर।	१२७
Sh. Sunil Dutt, Panipat	१२८
श्री चन्द्रमोहन खन्ना, नई दिल्ली।	१२९
श्री रमन सूद, होशियारपुर।	१३०

	पृष्ठ
श्री सुरेन्द्र पाल पाठक, होशियारपुर।	१३१-३२
श्री जगदीश चन्द्र सडाना, लुधियाना।	१३३
प्रि. (श्रीमती) सरोज बाला शर्मा कपूरथला।	१३४
प्रो. देवदत्त भट्टि, मालेरकोटला।	१३५
Mr. Arun Sethi, New Delhi	१३६
श्री आशीष भाटिया, नई दिल्ली।	१३७
Lala Jagat Narain Shanti Devi Charitable Trust Jalandhar	१३८
डॉ. कश्मीर चन्द आहूजा, जालन्धर।	१३९-१४०
Hans Raj Mahila Mahavadialya, Jalandhar	१४१

येन केनाप्युपायेन शुभेनाप्यशुभेन वा।
उद्धरेद् दीनमात्मानं समर्थो धर्मम् आचरेत्॥

पञ्च., 1. 389

व्यक्ति को चाहिए कि वह सभी प्रकार से अपनी रक्षा करे, क्योंकि अपनी सुरक्षा होने पर ही वह यथाशक्ति काम कर सकेगा, पर जब वह सामर्थ्ययुक्त हो जाए तब उसको धर्म का कार्य भी करना चाहिए। क्योंकि धर्मपूर्वक किए गए कर्म का फल ही मृत्यु के बाद उसके साथ जायेगा।

स्मृति में

स्व० श्री रविन्द्र कुमार शर्मा

(निधन : 29-1-2024)

की
पावन स्मृति
में
सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्रीमती ऊषा देवी (पत्नी) श्री चन्द्रभानु शर्मा (सपुत्र)
श्रीमती रंजिता शर्मा (सपुत्री)
मकान नं. 234/1, गली नं. 1,
सैंटरल टाऊन, होशियारपुर

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात्।
आयुर्विप्रापवादेन दानं च परिकीर्तनात्॥
(संवर्तस्मृति, 96)

झूठ बोलने से यज्ञ निष्फल हो जाता है। अभिमान करने से तप नष्ट हो जाता है। विद्वानों की निन्दा करने से आयु नष्ट होती है और दिये हुए दान का ढिंढोरा पीटने से दान का फल नष्ट हो जाता है।

With best compliments from

From :

DR. AJAY SHARMA & MRS. LATIKA SHARMA

9545, NESBIT LAKES Dr.
Alpharetta GA. 30022 USA

सुकृतस्य हि शान्त्वस्य श्लक्ष्णस्य मधुरस्य च।
सम्यगासेव्यमानस्य तुल्यं जातु न विद्यते॥

महा. शां. प. 84.10

किसी के लिए सान्त्वनामय, कोमल, मीठे और अच्छे कर्म करने की प्रेरणा देने वाला वचन बोला जाय और मीठी भाषा से सदा व्यवहार किया जाय तो इससे बढकर दूसरे को वश में करने का और साधन नहीं अर्थात् अच्छे व्यवहार से सभी प्राणी व्यक्ति के वश में हो जाते हैं।

स्वर्गीय श्री केवल कृष्ण शर्मा
(इंग्लैण्ड)
(6-12-2016)

स्वर्गीय श्रीमती सत्य शर्मा
(इंग्लैण्ड)
(25-03-2013)

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजिका:

श्रीमती इन्दुशर्मा (पुत्री)

52 Parsons Road, Slough SL3 7GU England

उपकर्तुं प्रियं वक्तुं कर्त्तुं प्रेममनिन्दितम्।
सज्जनानां स्वभावोऽयं केनेन्दुः शिशिरीकृतः॥

उपकार करना, प्रिय बोलना, अनिन्दित प्रेम करना, यह सब बड़े लोगों में स्वभाव से ही होता है। जैसे चन्द्रमा को शीतल करना किसने सिखाया है ?

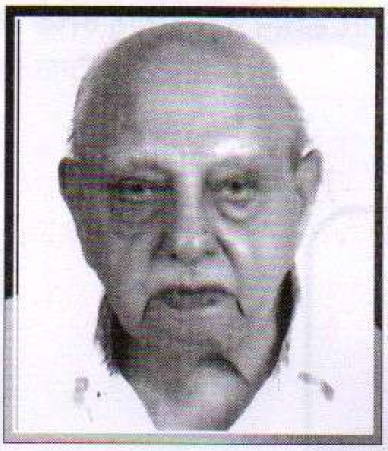

IN MEMORY OF MY HUSBAND

LATE SHRI SATDEV SUKHDEV VARMA

(BORN 13th OCTOBER 1930,
EXPIRED 18th SEPTEMBER 2020)

SHRIMATI KAILASH VARMA

FONDLY REMEMBERED BY:
COL. (RETD.) RAJEEV AND NISHA
PANKAJ AND DEEPIKA
NEERAJ AND SHILPA
&
GIROTRA FAMILY
RUNWAL PARK, CHEMBUR-DEONAR,
MUMBAI-400088

From : SH. CHANDER BHUSHAN C. GIROTRA, MUMBAI

यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूराद् गन्धो वाति।
एवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद् गन्धो वाति॥

नारायणोपनिषद्, 2.11.

जिस प्रकार फूला हुआ वृक्ष चाहे कहीं भी हो उसके फूल की सुगन्ध दूर-दूर तक फैल जाती है। इसी प्रकार चरित्रवान् व्यक्ति की सुगन्ध अर्थात् यश दूर-दूर तक फैल जाता है।

With best compliments from

Mr. Harish K. Bharti

6701, 37th Ave NW

Seattle WA 981176116

USA

अनुकूले विधौ देयं, यतः पूरयिता हरिः।
प्रतिकूले विधौ देयं, यतः सर्वं हरिष्यति॥
सुभाषितभाण्डागार, 66.1

व्यक्ति को चाहिए कि यदि परमात्मा अनुकूल है तो यथाशक्ति दान देना चाहिए क्योंकि दान देने से उत्पन्न होने वाली कमी को वह विश्वात्मा पूर्ण कर देगा। यदि विधाता प्रतिकूल है, तब भी व्यक्ति को दान देते रहना चाहिए, अन्यथा परमात्मा के निर्देश से चोरों द्वारा उसका धन चुरा लिया जायेगा। अत: दान देना सर्वोत्तम कार्य है।

स्व. मेजर रत्न चन्द डडवाल जी

(जन्म- 1940 निधन- 12-10-2021)
की पावन स्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजक-वर्ग:

श्रीमती कमला डडवाल (पत्नी) **श्री अरूण डडवाल** (पुत्र)
श्रीमती रेणु डडवाल (पुत्री)

न्यू कालोनी, पुराना ऊना बस अड्डा, ऊना रोड, होशियारपुर
की ओर से

स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः।
स लोके लभते कीर्तिं, परत्र च शुभां गतिम्॥

महा. उद्योगप. 133.45

इस संसार में जो व्यक्ति अपने ही पुरुषार्थ से उन्नति करता है, वही यशस्वी होता है तथा मृत्यु के बाद परलोक में भी वह सद्गति प्राप्त करता है अर्थात् जीवन में पुरुषार्थ सर्वश्रेष्ठ कर्म है।

परम पूज्य पिताश्री

स्व. श्री मेला राम परमार

परम पूज्या माताश्री

स्व. श्रीमती सरस्वती देवी परमार

स्व. श्री के.एस. परमार (Ex. Engineer, Retd.)

की

सदापर्णी पुण्यस्मृति में सादर भेंट

प्रयोजकवर्ग :-

समस्त परमार परिवार एवं डडवाल परिवार

न्यू कॉलोनी, सामने पुराना ऊना अड्डा, ऊना रोड, होशियारपुर-१४६००१

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात्।
आयुर्विप्रापवादेन दानं च परिकीर्तनात्॥
(संवर्तस्मृति, 96)

झूठ बोलने से यज्ञ निष्फल हो जाता है। अभिमान करने से तप नष्ट हो जाता है। विद्वानों की निन्दा करने से आयु नष्ट होती है और दिये हुए दान का ढिंढोरा पीटने से दान का फल नष्ट हो जाता है।

With best compliments from

PHARMA CRAFTS (INDIA)

A Leading Institutional Distributor for Human Health Care and Animal Health Care Comppanies

ANNEXE "PUSHAP KAMAL", P.W.D. REST HOUSE ROAD, GAGRET - 177201, DISTT. UNA (H.P.)
CELL : 098160-41475 & 98886-91475

ADM. OFF :- "PRAGATI BHAWAN" NEAR S.D. CITY PUBLIC SCHOOL, CHINTPURNI ROAD, HOSHIARPUR

SISTER CONCERNS :-

SURGINEEDS
Phase II] Shop No. 4, Dev Nagar
GAGRET - 177201 (H.P.)
CELL : 82640-98775

SHREYANS INDIA
Distributors for :
CASTROL, FLEETGUARD, EXIDE, CEAT TYRES

स्मरन्ति सुकृतान्येव न वैराणि कृतान्यपि।
सन्तः प्रतिविजानन्तो लब्ध्वा प्रत्ययमात्मनः।।

महा.सभापर्व. ७३.१०.

सज्जन व्यक्ति अपने जीवन के अनुभवों को समक्ष रखते हुए दूसरों के सुख-दु:ख को भी अपने समान ही समझकर दूसरों के द्वारा किए गए अच्छे व्यवहार को ही याद रखते हैं, दूसरों के द्वारा किए गए वैरभाव तथा विरोध को कदापि याद नहीं करते।

अपने
पूज्य पिता जी
तथा
पूज्य माता जी

स्व. श्री मनोहर लाल सूद
(25-12-1926 - 23-3-2014)

स्व. श्रीमती श्यामा सूद
(निधन 27-10-2017)

(प्रिय भाई) स्व. श्री संजीव सूद
(निधन 06-06-2020)

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रायोजकवर्ग : **अनुज सूद**
विद्या निकेतन, जोधामल रोड, होश्यारपुर

विधातृविहितं मार्गं न कश्चिदतिवर्तते।
कालमूलमिदं सर्वम् भावाऽभावौ सुखाऽसुखे।।

महा.आ. १२४७.

इस संसार में सभी कुछ काल अर्थात् समय के वश में है अत: जो बात हो चुकी है उसके लिए शोक नहीं करना चाहिए। संसार में कोई भी ऐसा शूरवीर तथा विद्वान् नहीं है जो जन्म-मरण, सुख-दु:ख को टाल सके। यह सब कुछ काल के अधीन है।

अपने

पूज्य दादा जी

तथा

दादी जी

स्व. श्री मनोहर लाल सूद
(25-12-1926 - 23-3-2014)

स्व. श्रीमती श्यामा सूद
(निधन 27-10-2017)

(पूज्य पिताश्री) स्व. श्री संजीव सूद
(निधन 06-06-2020)

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रायोजकवर्ग : **भरत सूद**
विद्या निकेतन, जोधामल रोड, होश्यारपुर

रविः हि रश्मिजालेन दिवा हन्ति बहिस्तमः।
सन्तः सूक्तिमरीच्योघैश्चान्तर्ध्वान्तं हि सर्वदा॥

बृहन्नारदीयपुराण, 4.37

सूर्य अपनी किरणों के समूह से दिन के समय बाहर जो अन्धेरा होता है उसको ही नष्ट करता है। परन्तु सज्जन व्यक्ति अपनी मधुर वाणीरूपी किरणों के समूह से व्यक्ति के अन्तःकरण में विद्यमान अन्धकाररूपी अज्ञान को सदा के लिए नष्ट करते हैं अर्थात् मधुर तथा ज्ञानकारी वाणी सर्वदा दूसरों को सत्‌शिक्षा प्रदान करती है।

Late Sh. Ved Parkash Malhan | Late Smt. Ram Piari Malhan | Late Advocate Charan Dass Malhan

प्रयोजक

सर्वश्री चरणदास मल्हन चेरिटेबल ट्रस्ट

३१-आर, माडल टाऊन,

होशियारपुर।

ममता परमं दुःखं निर्ममत्वं परं सुखम्।
सन्तोषाद् अपरं नास्ति सुख-स्थानं शचीपते॥

देवीभागवतम्, 5.4.45.

इस संसार में ममता अर्थात् किसी वस्तु के प्रति मोह ही सभी दुःखों का कारण है। ममत्वहीन व्यक्ति संसार में रहता हुआ भी सुखी है। सन्तोष से बढ़कर दूसरी कोई वस्तु सुख प्रदान करने वाली नहीं है। अतः व्यक्ति को सर्वदा सन्तुष्ट रहना चाहिए अर्थात् सन्तोष ही सुख का मूल है।

प्रातःस्मरणीय, भवसागर से तारणहार, भाग्यविधाता, करुणासागर

सद्गुरुदेव योगीराज

श्री चमन लाल कपूर जी महाराज

एवं

सद्गुरुमाता श्रीमती राजरानी जी

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजक :

योग साधन आश्रम संरक्षक समिति,

3-एल, माडल टाऊन, होशियारपुर

धीरानुत्साहसंपन्नान्   स्वधर्मानवमानिनः।
देवता अभिरक्षन्ति पुष्णन्त्येषां च वाञ्छितम्॥
कथासरित्सागर, 12.5.119.

धैर्यशाली, उत्साह वाले तथा अपने धर्म का पालन करने वाले मनुष्यों की देवता स्वयं रक्षा करते हैं एवं उनकी इच्छाओं की पूर्ति करते हैं।

हार्दिक शुभ कामनाओं सहितः

श्री ए. के. गुप्ता

263, सिविल लाईन्ज,
धर्मशाला-176215

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

गीता; 2. 40

जीवन में सेवा परोपकार अथवा जो कुछ भी कार्य निष्काम भाव से किया जाता है उसका फल महान् होता है। जीवन में थोड़ा-सा भी धर्ममय किया गया कार्य अनेक विपत्तियों से पार लगा देता है, अर्थात् निष्काम भाव से किया गया कोई भी धार्मिक काम इहलोक तथा परलोक में सुखदायी होता है।

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित

प्रयोजक:

प्रो. गिरीश चन्द्र ओझा

विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु भारत-भारती शोध-संस्थान,
पं. वि. पटल, होशियारपुर के भूतपूर्व चेअरमैन
गली नं. ३, कोठी-२,
गौतम नगर, होशियारपुर

दल-बल त्यागे मिलि गल रोये। दुख विधि दीना सुख सब खोये।
अब घर चालो रघुवर मोरे। तज हठि लागैं सब पग तोरे।।

गो. रामा. पृ. ७३.

वन में भरत और शत्रुघ्न तथा राम और लक्ष्मण एक-दूसरे से गले मिलकर खूब रोये और कहने लगे कि भाग्य ने हमारे सारे सुख छीन लिये और दु:ख दे दिये। भरत कहने लगा कि हे राम! अब आप हमारे साथ घर वापिस चलें और अपना हठ छोड़ दीजिए। हम सब आपके चरणों में पड़ते हैं।

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित

प्रयोजक

डॉ. ए. के. दत्ता

८५, दयानन्द विहार, विकास मार्ग एक्सटेन्शन,

दिल्ली - ११००९२

सेवितव्यो महावृक्षः फलशाखासमन्वितः।
यदि दैवात् फलं नास्ति छाया केन निवारिता॥
चाणक्यनीतिशास्त्र, अवतरणिका, 90

व्यक्ति को चाहिए कि वह फल, शाखा इत्यादि से युक्त बड़े वृक्ष की सेवा करे क्योंकि उससे फल आदि की प्राप्ति होती रहेगी। यदि भाग्यवश उसमें फल न लगें तो, छाया तो मिलती ही रहेगी। तात्पर्य है कि जीवन में महान् व्यक्तियों की सेवा करनी चाहिए। उनके सम्पर्क में रहना चाहिए। उससे जीवन में बहुत लाभ प्राप्त होता है।

पूज्या माताश्री

स्वर्गीया श्रीमती कैलाशवन्ती जी

(17. 7. 1929 – 14. 6. 2010)

की

पावन–स्मृति

में सादर समर्पित

प्रयोजक :

डॉ. शिवकुमार वर्मा

डिप्टी लाईब्रेरियन, वी. वी. बी. आई. एस. एण्ड आई. एस. (पं. वि.)

साधु आश्रम, होश्यारपुर।

निमन्त्रयीत सान्त्वेन सम्मानेन तितिक्षया।
लोकाराधानमित्येतत् कर्तव्यं भूतिमिच्छता।।

महा शा.प. १४०.५५

व्यक्ति को चाहिए कि यदि वह अपनी उन्नति चाहता है तो वह दूसरे लोगों को प्रिय बोल कर सम्मान देकर तथा सहनशीलता के साथ बुलावे। जनसामान्य को प्रसन्न रखने का यही एक उपाय है।

पूज्य पिता

स्व. श्री प्रभुदयाल जी

(जिनका दुःखद निधनः २६-११-१९९२ को हुआ)

पूज्या माता

स्व. श्रीमती शान्ति देवी

(जिनका दुःखद निधनः २८-०२-२०१४ को हुआ)

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजक वर्ग-

श्री अशोक कुमार खेर

B.Com [H], LL.B., FCA

सर्वश्री अशोक खेर एण्ड कम्पनी

[CHARTERED ACCOUNTANTS]

१०१, बी-१४, मुखर्जी नगर, कम्पलैक्स, दिल्ली-११० ००९

की ओर से

यज्ञ-दान-तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

श्रीमद्भग. गीता, 18.5

व्यक्ति को यज्ञ करना, दान देना तथा तप इत्यादि शुभ कर्म करना कदापि नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि ये सभी चीजें मनुष्य जीवन को पवित्र करने वाली हैं अर्थात् उसके जीवन को सफल बनाने वाली हैं।

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित

डाक्टर एन. के. उबराय
सी-३२, कालीन्दी कॉलोनी,
नई दिल्ली-११००६५

इह वा तारयेद् दुर्गाद् उत वा प्रेत्य तारयेत्।
सर्वथा तारयेत् पुत्रः पुत्र इत्युच्यते बुधैः॥

महा. आदिप. 147.5

जब कभी माता-पिता के सामने कठिनाईयाँ आती हैं तो पुत्र उनसे उनको पार लगाता है। मृत्यु के बाद वह परलोक से पार लगाता है, क्योंकि पुत्र सभी परिस्थितियों में पार लगाने वाला होता है, इसीलिए पण्डित उसको पुत्र कहते हैं।

अपनी प्रिय-पत्नी

स्व. श्रीमती सीता शर्मा

तथा

स्व. प्रो. राजेन्द्र जोशी

प्रिय पुत्र

स्व. राहुल देव शर्मा

प्रिय बहन

स्व. श्रीमती शकुन्तला देवी

एवं प्रिय भाई

स्व. श्री रणजीत पाल

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजक:

श्री देवव्रत शर्मा, एडवोकेट

६२, राजेन्द्र नगर, सिविल लाईन्ज़, जालन्धर शहर

दानं दरिद्रस्य, विभोः क्षमत्वं यूनां तपः ज्ञानवतां च मौनम्।
इच्छानिवृत्तिश्च सुखोचितानां, दया च भूतेषु दिवं नयन्ति।।

पद्मपु.पाता.खं.९२.५८.

गरीबों को दान देना, शक्तिसम्पन्न होने पर भी क्षमाशील होना, युवा होने पर भी तपस्वियों जैसा रहना, ज्ञानी होने पर भी कम बोलना, सुख के सभी साधन होने पर भी सुख की इच्छा न रखना, प्राणियों पर दया करना ये सभी गुण व्यक्ति को स्वर्गीय सुख प्रदान करते हैं।

❋

दोआबा के गान्धी, परमश्रद्धेय

स्व. पं. मूलराज शर्मा

(स्वतन्त्रता-सेनानी)

एवं

स्व. प्रो. शादीराम जी जोशी

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक:

श्री प्रशांत शर्मा

६२, राजेन्द्र नगर, सिविल लाईन्ज, जालन्धर शहर

यत्रापि कुत्रापि गता भवन्ति, हंसा महीमण्डन-मण्डनानि।
हानिस्तु तेषां हि सरोवराणां, येषां मरालैः सह विप्रयोगः॥

भामिनीविलास-

हंस चाहे कहीं चले जायें, उनके जाने से उस भूभाग की शोभा ही बढ़ती है। हानि तो उस स्थान की होती है जिस स्थान को छोड़कर हंस जाते हैं, अर्थात् यशस्वी व्यक्तियों के जाने से उस स्थान की जो क्षति होती है वह कभी पूरी नहीं होती।

स्व. श्री अरविन्द जैन जी

(निधन 10-4-2013)

की पुण्यस्मृति में

From:

SMT. SNEH LATA JAIN

Ms. Maeru Jain (MAERU)
Sun Shine, Components Pvt. Ltd.,
17-D, Focal Point, Phagwara Road, HOSHIARPUR

गुणानां वा विशालानां सत्-काराणां च नित्यशः।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः॥

स्वप्नवासव., 4–10

इस संसार में बहुत से गुणों वाले तथा गुणी व्यक्तियों का सत्कार करने वाले अनेक व्यक्ति देखे जा सकते हैं अर्थात् उनकी इज्जत करने वाले बहुत होते हैं। परन्तु गुणों का मूल्याङ्कन करने वाले व्यक्ति बहुत ही कम मिलते हैं।

❀

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ :

प्रयोजकवर्ग :

डॉ. श्रवण कुमार रिहानी
डॉ. (श्रीमती) वसुन्धरा रिहानी

कोठी नं. 1617, सैक्टर – 44 बी,
चण्डीगढ़।

अनाश्रिता दानपुण्यं, वेदपुण्यमनाश्रिताः।
रागद्वेषविनिर्मुक्ताः, विचरन्तीह मोक्षिणः॥

विदुरनीति, 4. 53

संसार से मोक्ष की कामना करने वाले महान् पुरुष दान तथा वेद के अध्ययन से मिलने वाले पुण्य को न चाहते हुए तथा राग और द्वेष से निर्लिप्त रहते हुए जीवन-यापन करते हैं अर्थात् संसार से निर्लिप्त रहते हैं।

संस्कृतज्ञ और संस्कृति के परमोपासक

स्व. ला. विपिनचन्द्र पाल सूद

(जन्म 23-5-1910, निधन 12-4-1977)

पत्नी

स्व. श्रीमती रत्नदेवी सूद (निधन : 12-8-1998)

सुपुत्र

स्व. श्री कैलाशचन्द सूद (निधन : 26-2-1993)

स्व. श्रीमती कृष्णा सूद (निधन : 25-6-2020)

(पत्नी श्री कैलाश चन्द्र सूद)

सुपुत्र

स्व. श्री राजेन्द्रप्रसाद सूद (निधन : 10-9-2012)

सुपुत्र

स्व. श्री पवन कुमार सूद (निधन : 2-7-2017)

तथा (पौत्र)

स्व. श्री सञ्जीव सूद

(श्री कैलाशचन्द सूद के सुपुत्र)

(जिनका दुःखद निधन दि. 20-1-1987 को फिलपाईन में हुआ)

की पुण्यस्मृति में

प्रयोजकवर्ग :

वीरेन्द्र कुमार सूद, एवं मयंक सूद

खानपुरी गेट, होश्यारपुर, दूरभाष (दुकान) 222610, (घर) 221365, 221404

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति, शीतमुष्णं भयं रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिः वा, स वै पण्डित उच्यते॥

विदुरनीति 1. 24

जिस व्यक्ति के कार्य में, सर्दी, गर्मी, भय, प्रेम, सम्पत्ति तथा विपत्ति किसी भी प्रकार से विघ्न पैदा नहीं कर सकते, वही पण्डित कहलाता है अर्थात् धीर व्यक्ति किसी भी प्रकार से विघ्नों से विचलित न होकर अपना कार्य पूर्ण करता है।

In the sacred memory of:
My Respected Father

Sh. Satya Bhushan Ananad

(17-2-1923 to 28-4-2016)

Foundly Remembered by:
Nimmi Dhir & Suresh Dhir
&
All Members of Family

प्रयोजक :

श्रीमती निम्मी धीर एवं श्री सुरेश धीर

A/3, चिराग इनक्लेव,
नई दिल्ली - ११००४८

सर्वे सर्वादृता लोका यस्यैते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वाः तस्याऽफलाः क्रियाः॥

महा. शान्ति. 108.12

जो व्यक्ति अपने माता,पिता और गुरु का आदर करता है या जिसने उनका आदर किया है। उसका सभी स्थानों पर आदर होता है। जो तीनों का सम्मान नहीं करता, उसके सभी काम जीवन में निष्फल हो जाते हैं।

पूज्य पिताश्री

श्री चमन लाल जी जुनेजा

(निधन 10-12-2000)

पूज्या माताश्री

श्रीमती रुक्मिणी देवी जुनेजा

(निधन 31-07-2011)

को श्रद्धासुमन भेंट

प्रयोजकवर्गः

डॉ. अश्वनी जुनेजा (सुपुत्र),डॉ. श्रीमती नीलम जुनेजा (पुत्रवधु)
डॉ. चैतन्य जुनेजा (पौत्र), डॉ. श्रीमती शुभदा जुनेजा (पौत्रवधु)
डॉ. अक्षय जुनेजा (पौत्र), डॉ. श्रीमती वैशाली जुनेजा (पौत्रवधु)
अनायशा जुनेजा (प्रपौत्री) अयांश जुनेजा (प्रपौत्र)

रुक्मिणी स्कैन सैंटर

नज़दीक नई तहसील, होशियारपुर।

अर्थप्रदानमेवाहुः संसारे सुमहत्तपः ।
अर्थदः प्राणदः प्रोक्तः प्राणा ह्यर्थेषु कीलिताः ॥

कथासरित्सागर – 6. 2. 9

इस संसार में धन का दान सबसे बड़ा तप है। धन-दान को जीवन-दान कहा गया है, क्योंकि जीवन धन पर ही निर्भर है।

With best compliments from:

Dr. D.V. Salwan

15, Budh Ram Colony, Civil Lines,
Mall Road, Hoshiarpur - 146 001

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

यजु. 40. 7.

जिस अवस्था में ज्ञानवान् व्यक्ति के लिए सारा चर-अचर संसार आत्मस्वरूप हो जाता है। उस अवस्था में सब में एकत्व का दर्शन करने वाले मनुष्य को मोह और शोक कहां होता है? अर्थात् उसे उस अवस्था में मोह और शोक नहीं होता।

विश्वेश्वरानन्द संस्थान के पुराने सदस्य तथा परम हितैषी

अपने पूज्य पिताश्री

स्व. श्री भेरीराम जी धवन

तथा

अपनी पूज्या माताश्री

स्व. श्रीमती चानण देवी जी धवन

की

पावन स्मृति में

श्री ए. के. धवन

55 ए जोरबाग, नई दिल्ली

तथा

विनीत बच्चों एवं हितचिन्तकों

की ओर से

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासात् ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥
श्रीमद्भग. गीता.12.12

मर्म को जाने विना अभ्यास की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान की अपेक्षा परमात्मा के स्वरूप का ध्यान करना उत्तम है। ध्यान से कर्म-फल-त्याग उत्तम है और त्याग से शान्ति प्राप्त होती है।

PREETHAM

SENIOR CITIZEN'S ENCLAVE

POLLACHI, TAMILNADU -642 002

A HOME FOR SENIOR CITIZENS

A Calm, Quite & Peaceful place for Comfort, Care Homely Veg. Food, Prayers, Satsangs & Spiritual Discourse with full Med. Facilities close by, etc.

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

WG. CDR. LAKSHMINARAYANAN S. R. (RTD.)

CONTACT : – Tel.: 98422-54202/ 94430-54204

e-mail :– vanitha@preetham.org.in Visit at : www.preetham.org.in.

एकः प्रजायते जन्तुः एक एव प्रलीयते।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतम् एक एव च दुष्कृतम्॥

मनुस्मृ. 4. 240

इस संसार में प्राणी अकेला ही पैदा होता है अकेला ही मरता है। अकेला ही पुण्यों का फल तथा अकेला ही जीवन में किए गए पाप कर्मों का फल भोगता है। अत: व्यक्ति को सर्वदा ऐसा कर्म करना चाहिए जिससे वह स्वर्ग आदि लोकों को जाये।

❉

विश्वेश्वरानन्द संस्थान के परम भक्त व सहायक

स्व. डा. पृथ्वीनाथ जी सूद

(जन्म 28-10-1914; निधन 02-02-1976)

एवं

स्व. श्रीमती योजनबाला सूद

(जन्म 25. 10. 1927, निधन 7. 6. 2005)

की

पुण्यस्मृति

में

उनके परिवार

की

ओर से

प्रयोजकवर्ग :

डॉ. अशोक सूद, श्रीमती रजनी सूद,

श्री अक्षय (पुत्र), श्रीमती रोजी (पुत्रवधु) होशियारपुर।

माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयाः सदा नृणाम्।
क्रियास्तस्याफलाः सर्वा यस्यैते नादृतास्त्रयः॥
(शंखस्मृति, 3,3)

माता-पिता और गुरु ये तीनों सभी के लिए पूजने योग्य हैं। जो इन तीनों का आदर नहीं करता, उसके सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं।

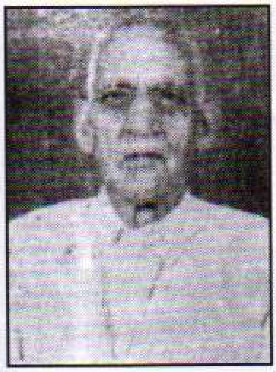

पूज्य पिताश्री

स्व. श्री देवीदयाल जी भल्ला

पूज्या माताश्री

स्व. श्रीमती रामप्यारी जी भल्ला

तथा

प्रिय पत्नी **स्व. श्रीमती राज कुमारी जी भल्ला**

की **पुण्यस्मृति** में

श्री विश्वामित्र भल्ला, मोबाईल : 98721-90179

सरिता, शोभना, रेनू, मोनिका और ऋतु

चण्डीगढ़ की ओर से

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासा-
मामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च,
ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह॥ ऋग्वेद., 6.28.3

जिस धन को देवताओं की पूजा में लगाया जाता है या जो धन दान रूप से दिया जाता है, वह कभी नष्ट नहीं होता, उसको चोर भी नहीं चुरा सकते और न कोई शत्रु ही उसके कारण दु:खी कर सकता है। दान दिए गए उस धन से दाता इस लोक और परलोक में शोभायमान रहता है।

अपने पूज्य पति

स्व. डॉ. सुदर्शन कौशल

[जिनका दु:खद निधन दिनांक 5-1-2008 को हुआ]

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजकवर्ग :

श्रीमती सुशील कौशल

तथा

पुत्र ललित और हिमांशु

मोहल्ला आहलूवालिया, दसूहा (होशियारपुर)

शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा।
कृतं भवति सर्वत्र नाकृतं विद्यते क्वचित्।।

महा. स्त्रीपर्व-३.३६.

इस संसार में जो जैसा कर्म करता है उसको वैसा ही फल मिलता है। जो दान, दया, सेवा इत्यादि अच्छे कर्म करेगा उसको दूसरे जन्म में अच्छा फल मिलेगा तथा जो हिंसा, चोरी, लोभ, ईर्ष्या आदि पाप कर्म करेगा उसको उसी प्रकार का बुरा फल प्राप्त होगा। किसी भी व्यक्ति को कभी भी कहीं भी बिना किए का फल प्राप्त नहीं होता और ऐसा भी नहीं कि व्यक्ति यह सोचकर कर्म ही न करे कि कहीं मुझे उसका फल न मिल जाये। व्यक्ति कर्म किए बिना एक क्षण रह भी नहीं सकता क्योंकि बिना काम किए तो वह जीवित भी नहीं रह सकता। यह सोचकर मनुष्य को दान, दया , भक्ति इत्यादि अच्छे कर्म ही करने चाहिए।

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित :

डॉ. भागेन्द्र सिंह ठाकुर

वार्ड नं. ६, लोअर सेरी, जोगेन्द्र नगर,

जिला मण्डी (हि.प्र.)- १७५०१५

अनागतविधातारमप्रमत्तमकोपनम्।
चिरारम्भमदीनं च नरं श्रीरुपतिष्ठति ॥
महाभारत, 12. 116. 16.

जो होनहार को आगे से सोच करके रखता है और सावधान रहता है तथा क्रोध नहीं करता और बिना सोचे-समझे किसी काम को सहसा नहीं करता तथा दीन नहीं होता, उसके पास धन अपने-आप आया करता है।

अपने पूज्य पिताश्री

स्व. श्री सुन्दरश्याम जी

(चण्डीगढ़ निवासी)

की
पुण्यस्मृति
में
सादर समर्पित

प्रयोजकः
श्री चन्द्रमोहन अरोड़ा
3-एल, माडल टाऊन,
होशियारपुर।

न फलादर्शनाद् धर्मः शङ्कितव्यो न देवताः।
यष्टव्यं च प्रयत्नेन दातव्यं चानसूयता॥

महा. वन. 31.38

धर्ममय कार्य का फल तुरन्त न दिखाई दे तो इसके लिए धर्म तथा देवताओं पर किसी प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए। अतः किसी प्रकार की शंका न करते हुए व्यक्ति को अपने जीवन में यत्नपूर्वक यज्ञ और दान करते रहना चाहिए, अर्थात् दान का फल यहाँ नहीं तो परलोक में अवश्य प्राप्त होता है।

अपने पूज्य पिताश्री

स्व. श्री दयालचन्द जी चावला

तथा

पूज्या माताश्री

स्व. श्रीमती इन्द्रा जी चावला

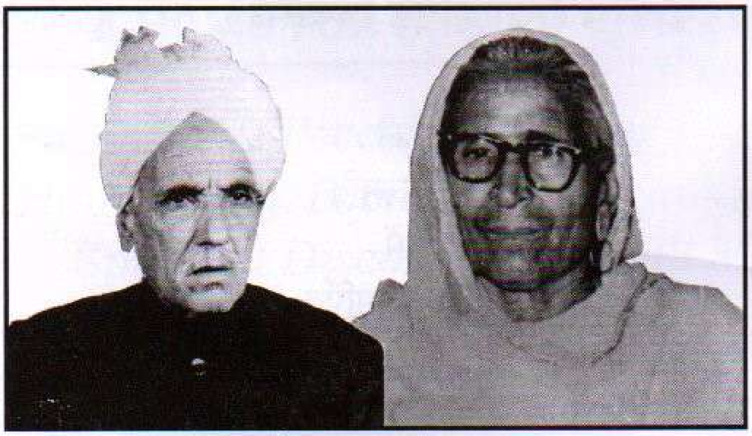

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजक :

डॉ. एस. एल. चावला

चावला चिल्ड्रन हास्पीटल, शहीद ऊधमसिंह नगर, जालन्धर शहर

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥

श्रीमद्भ० गीता, 4.19

जिस व्यक्ति के सभी काम कामनाओं के संकल्प से अर्थात् फल की इच्छा से रहित होते हैं तथा ज्ञानरूपी अग्नि में जिसके कार्य-फल जल चुके होते हैं बुद्धिमान्-जन ऐसे ही व्यक्ति को पण्डित कहते हैं।

स्व. श्री रघुवरदयाल जी कपिला

तथा

स्व. श्री रामशरणदास जी

(निधन २२-१२-१९८८)

अपनी पूज्या माताजी

स्व. श्रीमती रामप्यारी जी

(निधन २३-५-२०१०)

की

पावन स्मृति

में

सादर समर्पित

उनके बच्चों की ओर से

प्रयोजक :

डॉ. बी.के. कपिला (पुत्र) एवं श्रीमती राकेश कपिला (पुत्रवधू)

सुतहरी रोड, होशियारपुर (पंजाब)

ज्ञानान्वितेषु युक्तेषु शास्त्रज्ञेषु कृतात्मसु।
न तेषु सज्जते स्नेहः पद्मपत्रेष्विवोदकम्॥

महा. आ. प. 2.32

जो पूर्ण ज्ञानी हैं शास्त्रों के ज्ञाता और सभ्य हैं वे संसार में रहते हुए भी संसार से ऐसे ही निर्लिप्त रहते हैं, जैसे कमल का पत्ता पानी में रहता हुआ भी उससे निर्लिप्त रहता है, उस पर पानी का कोई असर नहीं होता।

पूज्य पिता
स्व. श्री रामभज दत्त

की
पुण्यस्मृति
में
सादर समर्पित

प्रयोजक :

Shri Sunil Dutt

Vogue Fabrics, Post Box 23, Opp. BBMB Sewah,

G. T. Road, Panipat-132103 (Haryana)

ओ३म्। भूर्भुवः स्वः।
तत् सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।।

स्मृति में

स्व० श्री योगेन्द्र पाल जी खन्ना

(निधन : १३-१०-१९७३)

स्व० श्रीमती शीला रानी खन्ना

(निधन : १७-०५-२०१४ में)

स्व० श्री दिनेश खन्ना

(निधन : २०-०६-२०१४ में)

कु० किरण खन्ना

(निधन : ०६-०७-२०२० में)

की
पावन स्मृति
में
सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री चन्द्रमोहन खन्ना एवं समस्त परिवार

भेरा एनक्लेव, पश्चिम विहार,

नई दिल्ली-११००८७

धर्मे रताः सत्पुरुषैः समेतास्तेजस्विनो दानगुणप्रधानाः।
अहिंसका वीतमलाश्च लोके भवन्ति पूज्याः मुनयः प्रधानाः।।

रामा. अयोध्याकाण्ड- १०९. ३६

जो धर्माचरण करते हैं, सज्जनों की संगति करते हैं, खूब दान देते हैं और जिनका चरित्र उत्तम है, ऐसे श्रेष्ठ विचारशील व्यक्ति संसार में सदा सम्माननीय होते हैं।

पूज्य माता
स्व० श्रीमती कृष्णा सूद
जो ३०-१-२०१७ को
प्रभुचरणों में लीन हुईं

पूज्यपिता
स्व० श्री ओमप्रकाश सूद
जो १५-२-२०२३ को
प्रभुचरणों में लीन हुईं

की
पुण्यस्मृति
में
समर्पित

प्रयोजकवर्ग :
श्री रमन सूद (पुत्र) श्रीमती शिखा सूद (पुत्रवधु)
एवं समस्त परिवार
1038/10, राम गली, नजदीक बहादुरपुर गेट,
होशियारपुर।

मानापमानयोः तुल्यः तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥

गी. 14.25

भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि जो संसार में रहते हुए भी मान और अपमान होने पर भी समान रहता है। मित्र तथा शत्रु पक्ष में भी समान भाव रखता है तथा जितने भी कार्य करता है उनमें अपने को कर्ता नहीं समझता अर्थात् कर्ता होने का घमण्ड नहीं करता वह पुरुष गुणातीत है अर्थात् वह इस संसार से ऊपर उठ चुका है।

❋

अपने पूज्य पिताश्री

स्व. श्री देवदत्त पाठक

(जिनका दुःखद निधन दिनांक 9-3-1997 को हुआ)

गांव एवं डाकघर बजवाड़ा, जिला होश्यारपुर

की

पुण्य स्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक-वर्गः

श्री सुरेन्द्र पाल पाठक (पुत्र)

ग्राम. एवं पो. बजबाडा कलां, होशियारपुर

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्याद् आचार्यस्य च सर्वदा।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते॥

मनुस्मृति. 2.228

व्यक्ति माता-पिता तथा आचार्य की सेवा करके उन्हें प्रसन्न करे अर्थात् सदा उनके हित की बात करता हुआ उन्हें प्रसन्न रखे। इन तीनों की सन्तुष्टि के सामने सभी तप भी समाप्त हैं अर्थात् जिसने अपने सेवाभाव से इन तीनों को जीवन में प्रसन्न कर लिया समझो उसने सम्पूर्ण तप का फल प्राप्त कर लिया।

अपनी पूज्या माताश्री

स्व. श्रीमती सीता देवी पाठक

(धर्मपत्नी स्व. श्री देवदत्त पाठक)

(जिनका दुःखद निधन दिनांक 5-1-2012 को हुआ)

गांव एवं डाकघर बजवाड़ा, जिला होश्यारपुर

की

पुण्य स्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक-वर्ग:

श्री सुरेन्द्र पाल पाठक (पुत्र)

ग्राम. एवं पो. बजबाडा कलां, होशियारपुर

नास्ति मातृसमा छाया नास्ति मातृसमा गतिः।
नास्ति मातृसमं त्राणं नास्ति मातृसमा प्रिया।।

महा.शा.प. २६६.३१.

संसार में पुत्रों के लिए माता के समान और कोई छाया दायक नहीं क्योंकि उसके समीप बैठकर पुत्रों को सुख प्राप्त होता है। बच्चे के लिए माता के अतिरिक्त और कोई सहारा नहीं होता। माता के समान और कोई बच्चे की रक्षा करने वाला नहीं हो सकता। अत: माता के समान संसार में और कोई प्रिय वस्तु नहीं हो सकती ।

अपने पूज्य पिता

स्व. श्री शिवलाल सडाना

[निधन-२५-७-१९९६]

एवं अपनी पूज्य माता

स्व. श्रीमती आज्ञावती सडाना

[निधन-०५-०१-२०२१]

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री जगदीश चन्द्र सडाना

यूनाईटिड इञ्जिनियर्ज़ [रजिस्टर्ड]

६, मन्दिर मार्किट, माता रानी रोड, लुधियाना।

न माता न पिता किञ्चित् कस्यचित् प्रतिपद्यते।
दानपथ्यौदनो जन्तुः स्वकर्मफलमश्नुते।।

महाभा.शां. प. 298.39

इस जन्म में या किसी भी योनि में प्राणी के माता-पिता पूर्वजन्म में किसी के द्वारा किए गए कर्म को बदलने में सहायता नहीं कर सकते। वह इस जन्म में जो कुछ दान-पुण्य करता है। उसी का फल परलोक जाते हुए उसके मार्ग में सहायता करता हैं, अर्थात् जीव को अपने ही कर्मों के अनुसार योनि तथा सब कुछ प्राप्त होता है।

अपनी सास, ससुर जी की याद में

स्व. श्री सन्त राम (15-08-2015)

स्व. श्रीमती आशा रानी (01-05-2015)

पूज्य पिताश्री एवं माताश्री

स्व. श्री अयोध्या प्रशाद वर्मा (06-03-2018)

स्व. श्रीमती कौशल्या वर्मा (निधन 9-12-1999)

एवं अनुज भ्राता

स्व. श्री सुधीर कुमार (निधन 15-7-2004)

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजिका

श्रीमती सरोज बाला वर्मा

(सेवानिवृत्त प्रिंसिपल)

अमर आवास 12, प्रोफेसर कालोनी, कपूरथला।

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलति तीर्थं सद्यः साधुसमागमः॥

चा. नी. शा., 12. 8.

संसार में साधुजनों अर्थात् पुणयात्माओं का दर्शन पुण्यफल देने वाला होता है, क्योंकि सज्जन व्यक्ति तीर्थों के समान होते हैं। उनमें इतना अन्तर है कि तीर्थस्थान पर किया गया दान आदि बहुत समय बाद फल देता है, किन्तु सज्जन व्यक्तियों का दर्शन, उनका आर्शीवाद तो तत्काल अच्छा फल देने वाला होता है। अत: सज्जन की सेवा तथा उनके दर्शन जीवन को सफल बनाते हैं। अत: सज्जनसेवा सर्वोपरि है।

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित

प्रो. देवदत्त भट्टि
निदेशक वैदिक शोधशाला,
अग्रनगर, मालेरकोटला (पंजाब)

अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

हितोपदेश

यह हमारा है, यह दूसरे का है। यह ओछे चित्त वालों की सोच होती है। उदारचित्त वाले व्यक्ति के लिए सारा संसार ही अपना होता है। उनके लिए कोई पराया नहीं होता। न ही वे किसी से वैरभाव रखते हैं।

With best compliments from

Mr. Arun Sethi

H. No. E-8/11,
Ground Floor, Vasant Vihar,
New Delhi - 110 057

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद् विमुच्यते॥

चाणक्यनीतिशतक, 6. 4.

संसार में मनुष्यशरीर प्राप्त कर जीव कर्म करता है। स्वयं ही अपने द्वारा किए गए कर्म के फलों को भोगने के लिए नाना योनियों को धारण कर संसार में घूमता है। अन्त में स्वयं ही अच्छा कर्म करके आवागमन के चक्र से छूट जाता है, अर्थात् जीव नाना प्रकार की योनियों में उत्पन्न हो कर उनमें सुख-दुःख आदि को अपने ही कर्मों से भोगता है।

❋

विश्वेश्वरानन्द संस्थान के भूतपूर्व सदस्य तथा हितैषी

अपने पूज्य पिताश्री

स्व. श्री हरबंसलाल जी भाटिया

(जिनका दुःखद निधन दिनांक 3-3-2001 को हुआ)

एवं

पूज्या माताश्री

स्व. श्रीमती लज्या भाटिया

(जिनका दुःखद निधन दिनांक 24-3-2006 को हुआ)

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री अशीष भाटिया,

24, राजेन्द्र पार्क, नई दिल्ली।

लोके सान्त्वं सदा वाच्यं न वाच्यं परुषं क्वचित्।
पूज्यान् संपूजयेत् दद्यान्न च याचेत् कदाचन॥

महाभा. आदिप. 82.13

मनुष्य को चाहिए कि वह सदा सान्त्वना देने वाले वचन बोले, कहीं पर भी कटुभाषा का प्रयोग न करे, पूज्य पुरुष का सदा आदर करे तथा कभी भी किसी भी स्थिति में भिक्षा न मांगे।

With Best Compliments

From:

LALA JAGAT NARAIN SHANTI DEVI CHARITABLE TRUST

CIVIL LINES, JALANDHAR - 144 001

वाचा तु यत् कर्म करोति किंचित् वाचैव सर्व समुपाश्नुते तत् ।।
मनस्तु यत् कर्म करोति किंचित् मनस्य एवायमुपाश्नुतेतत्।।

महा.शा.प. २०१.२३

कर्म की गति बड़ी ही निराली है। उसके विषय में कहा गया कि मनुष्य जीवन में जिस इन्द्रिये से जो भी अच्छा या बुरा कर्म करता है। वह उसी से उसका वैसा ही फल भोगता है। यदि वह वाणी से कोई कर्म करता है तो उसका फल वाणी से और मन से करता है तो उसका फल मन से ही प्राप्त करता है।

विश्वेश्वरानन्द संस्थान के भूतपूर्व सदस्य तथा हितैषी

अपने पूज्य पिताश्री

स्व. श्री कर्मचन्द जी आहूजा

(जिनका निधन १८-५-२००१ को हुआ)

एवम्

अपनी पूज्या माताश्री

स्व. श्रीमती बुद्धवन्ती जी आहूजा

(जिनका निधन १४-१-१९९७ को हुआ) की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित।

प्रयोजक वर्ग:

डॉ. कशमीर चन्द आहूजा एवं श्रीमती निर्मल आहूजा

४५-ए, नव निर्माण, जनता कालोनी, जालन्धर।

मुच्यते बन्धनात् पुष्पं फलं वृक्षात् प्रमुच्यते।
क्लिश्यन्नापि सुतं स्नेहैः पिता पुत्रं न मुञ्चति।

महा.शां.प. २६६,२२

यह निश्चित है कि समय आने पर पुष्प पेड़ की डण्ठल से अलग होकर गिर जाता है। पकने पर और कभी कभी बिना पके भी फल वृक्ष की टहनी से अलग हो जाता है। किन्तु लोक में देखा गया कि पिता को पुत्र के पालने में, उसको बढ़ाने में, या अन्य कितने ही कष्ट उठाने पड़ें, पर पिता पुत्र को कभी नहीं छोड़ता।

स्व. श्री विनय आहूजा

(9 फरवरी, 1973 - 12 अक्तूबर, 2020)

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजक वर्गः

डॉ. कशमीर चन्द आहूजा (पिता) एवं श्रीमती निर्मल आहूजा (माता)
श्रीमती सुचेता आहूजा (पत्नी), श्री लक्षित आहूजा (पुत्र)
श्री संचित आहूजा (पुत्र)

४५-ए, नव निर्माण, जनता कालोनी, जालन्धर।

Empowering Women Since 1927...

ISO 9001 : 2015 CERTIFIED

HANS RAJ MAHILA MAHAVIDAYALAYA

MAHATMA HANS RAJ MARG JALANDHAR (PUNJAB) INDIA

AFFILIATED TO GURU NANAK DEV UNIVERSITY, AMRITSAR — MANAGED BY DAV COLLEGE MANAGING COMMITTEE, NEW DELHI

HIGHEST GRADE & SCORE NATIONWIDE BY NAAC

College of Excellence by UGC – Kaushal Kendra by UGC – Star Scheme College – CURIE Grant by – College with Four Gold Star Ranking by – Excellence in Institutional Social Responsibility FICCI – CURIE Grant by

Postgraduate Courses

- M.A.- Journalism and Mass Communication, Economics, English, Hindi, Punjabi, Political Science, Music Vocal, Music Instrumental, Dance
- M.Sc.- Physics, Chemistry, Mathematics, Botany, Bioinformatics, Computer Sc., Information Technology, Fashion Designing
- M.Com

PG/UG Diploma

- Garment Construction & Fashion Designing
- Cosmetology
- Computer Applications
- Business Management
- Counselling
- Financial Services
- Computer Applications
- Library Science
- Bioinformatics

Concessions and scholarships worth Rs. 2.00 Crore for meritorious and deserving students

Courses under DDU KAUSHAL KENDRA Scheme by UGC

- M.Voc. -Web Technology & Multimedia, Cosmetology and Wellness, Mental Health Counseling
- B.Voc. - Journalism & Media, Fashion Technology, Mental Health Counselling, Beauty Culture & Cosmetology, Web Technology & Multimedia, Banking and Financial Services, E-Commerce & Digital Marketing, Yoga and Fitness

Diploma under Community College

- Fashion Designing (ADFD)
- Journalism and Media
- Nanny & Elderly Health Care
- Communication Skills
- Organic Farming
- Applied Music & Dance
- Tourism and Hospitality
- Cooking And Catering Management

UG Courses with Hons.

* Economics * English
* Psychology * Hindi
* Commerce * Pol. Sc.

Undergraduate Courses

B.A., B.A. (with Hons.), B.Com., B.Com. (with Hons.), B.Com (Financial Services), BBA, B.Sc.- Fashion Designing, Biotechnology, Medical/Non-Medical with Bioinformatics, Med/Non-Med with Biotech, Non-Medical, Economics, Computer Science, Information Technology, Bachelor in Physical Education & Sports (BPES), B.Design (Multimedia), B.F.A. (Bachelor of Fine Arts), B.D. (Bachelor of Design), B.C.A, Bachelor of Library and Information Science

International Standard Swimming Pool | Hostels with Modern Amenities | A Fleet of Buses | Fully Wi-Fi Campus

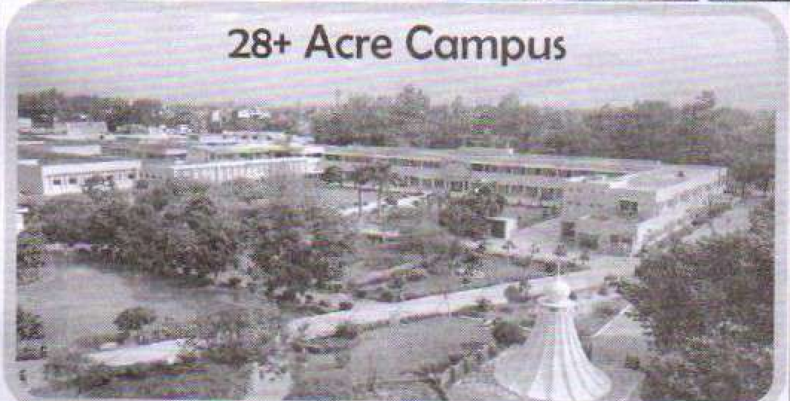

3 On-Campus Hostels with a spacious Sports Wing

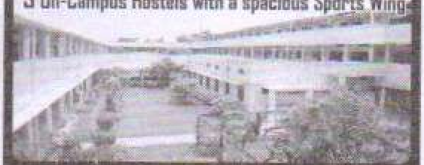

- AC/ Non-AC Rooms (2/3/4 Seater)
- Exquisite Dinning Halls
- Hygienic and Nutritional Food
- AC Prayer Hall
- Reading Room
- Lodging Facility for Parents
- 24 Hour Power Backup
- Beauty Salon
- Fashion Boutique
- Night Café and Fruit Shop
- Stationery cum General Store
- PNB e-Lobby
- Open Air Theatre

HMV COMPETITION HUB
- Coaching for CA Foundation
- Coaching for UGC Net
- Coaching For English ProÀciency
- Coaching for JEE/NEET

HMV
- Cricket Academy
- Swimming Academy
- Badminton Academy
- Wrestling Academy
- Dronacharya Archery Academy

Justice (Retd.) N.K. Sud
Chairman, LC

Prof. Dr. (Mrs.) Ajay Sareen
Principal

Mahatma Hans Raj Marg, Jalandhar-144008 (Punjab) India
Ph: 0181-2253710, 2204198 Web: www.hrmmv.org E-mail: hmv_jal@yahoo.co.in

संस्थान के जीर्णोद्धार के निमित्त धन की अपील

उत्तरभारत में वैदिक तथा लौकिक संस्कृतसाहित्य एवं संस्कृत और संस्कृति के प्रचार तथा प्रसार में सतत प्रयत्नशील विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान से लगभग सभी परिचित हैं। यह संस्थान लाहौर में डी. ए. वी. कॉलेज के रिसर्च विभाग के कैम्पस में स्थित था। 1947 में भारतविभाजन के बाद लाहौर से विस्थापित होकर साधु आश्रम, होशियारपुर में पुनः स्थापित हुआ। पश्चिमोत्तर भारत में वैदिक- साहित्य के रचनात्मक कार्य को करने वाला यह एकमात्र संस्थान है। हिन्दी के प्रचार और प्रसार में यह सतत प्रयत्नशील है। यहाँ संस्कृत के छात्रों के लिए छात्रावास की व्यवस्था है, जिसमें सभी प्रकार की सुविधाएं प्राप्त हैं। प्रतिसप्ताह वैदिक मंत्रों से यज्ञ करने की प्रथा आज भी संस्थान में है। इस संस्थान को किसी प्रकार की राजकीय सहायता प्राप्त नहीं है। केवल सदस्यता-शुल्क एवं दानी पुरुषों द्वारा समय-समय पर प्रदत्त धन एवं डी.ए.वी. कॉलेज प्रबृन्धकर्तृ सभा, नई दिल्ली से ही इसका व्ययभार चलता है। इस प्रकार के स्रोतों से प्राप्त होने वाला धन आज के इस मंहगाई के युग में संस्थान में कार्यरत कर्मचारियों के वेतन के लिए भी पर्याप्त नहीं होता। धन के अभाव के कारण संस्थान में नवनिर्माण तो रुका हुआ ही है। इसके अतिरिक्त 1947 से भी पूर्व के बने हुए इसके पुराने भवन भी इतने जीर्ण हो गए हैं कि वह धीरे-धीरे गिर रहे हैं। अन्दर के सभी कमरों की स्थिति भी दयनीय है। संस्थान के पास इतना धन नहीं है कि उनकी मुरम्मत की जा सके। कारोना काल में संस्थान की अर्थिक स्थिति कंगाली आटा गीला वाली हो गई थी।

उस समय डी.ए.वी. कतृसभा से विशेष सहायता दी गई जिससे संस्थान के कर्मचारियों का वेतन इत्यादि दिया जा सका। अतः दानी सज्जनों से निवेदन है कि वे आश्रम की जीर्ण-शीर्ण इमारतों, अन्दर की सड़कों इत्यादि या अन्य पुराने भवनों की मुरम्मत हेतु यथाशक्ति धन की सहायता प्रदान कर अनुगृहीत करेंगे। जिससे यहां के छात्रावास, सत्संग-भवन आदि की मुरम्मत की जा सके। मुझे आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि विद्याप्रेमी दानी सज्जन इस दिशा में ध्यान देकर अनुगृहीत करेंगे।

दानी सज्जन निम्न प्रकार से बैंक में सीधा धन NEFT द्वारा जमा करवा सकते हैं और इसकी सूचना कार्यालय को दें –

बैंक का नाम	:	**केनरा बैंक, वी. वी. आर. आई., डाकघर साधु आश्रम, होशियारपुर।**
खाता संख्या	:	**S. B. 2719101000001**
IFSC Code No.	:	**CNRB 0002719**

विशेष – : बैंक ड्राफ्ट या चैक द्वारा राशि वी. वी. आर. आई., होशियारपुर के नाम भेजें। संस्थान को भेजी जाने वाली धनराशि 80 जी इन्कमटैक्स 1961 के अधीन करमुक्त है।

निवेदक

इन्द्रदत्त उनियाल

आदरी संचालक

वी. वी. आर. आई., डाकघर साधु आश्रम, होशियारपुर।

सत्संग मन्दिर

संस्थान यज्ञशाला

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम, होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम, होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-४-२०२४ को प्रकाशित।